चिद्-विलासः

(श्री विद्या रहस्यम्)

श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद

दतिया, म.प्र.

व्याख्याकार

श्री पीताम्बरा पीठस्य राष्ट्रगुरु, श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज

श्री जगदम्बा महात्रिपुर सुन्दरी

।। श्री ।।

(ऊँ तत्सत्)

चिद्-विलास

(श्री विद्या रहस्यम्)

– प्रकाशक –

श्री पीताम्बरा पीठ, दतिया (म.प्र.)

मुल्य :– २५ रूपये

मुद्रक :– शिवशक्ति प्रेस प्रा. लि.
नया गांव, ग्वालियर रोड, झांसी (उ.प्र.)
फोन :– ०५१०–२४४१०६२
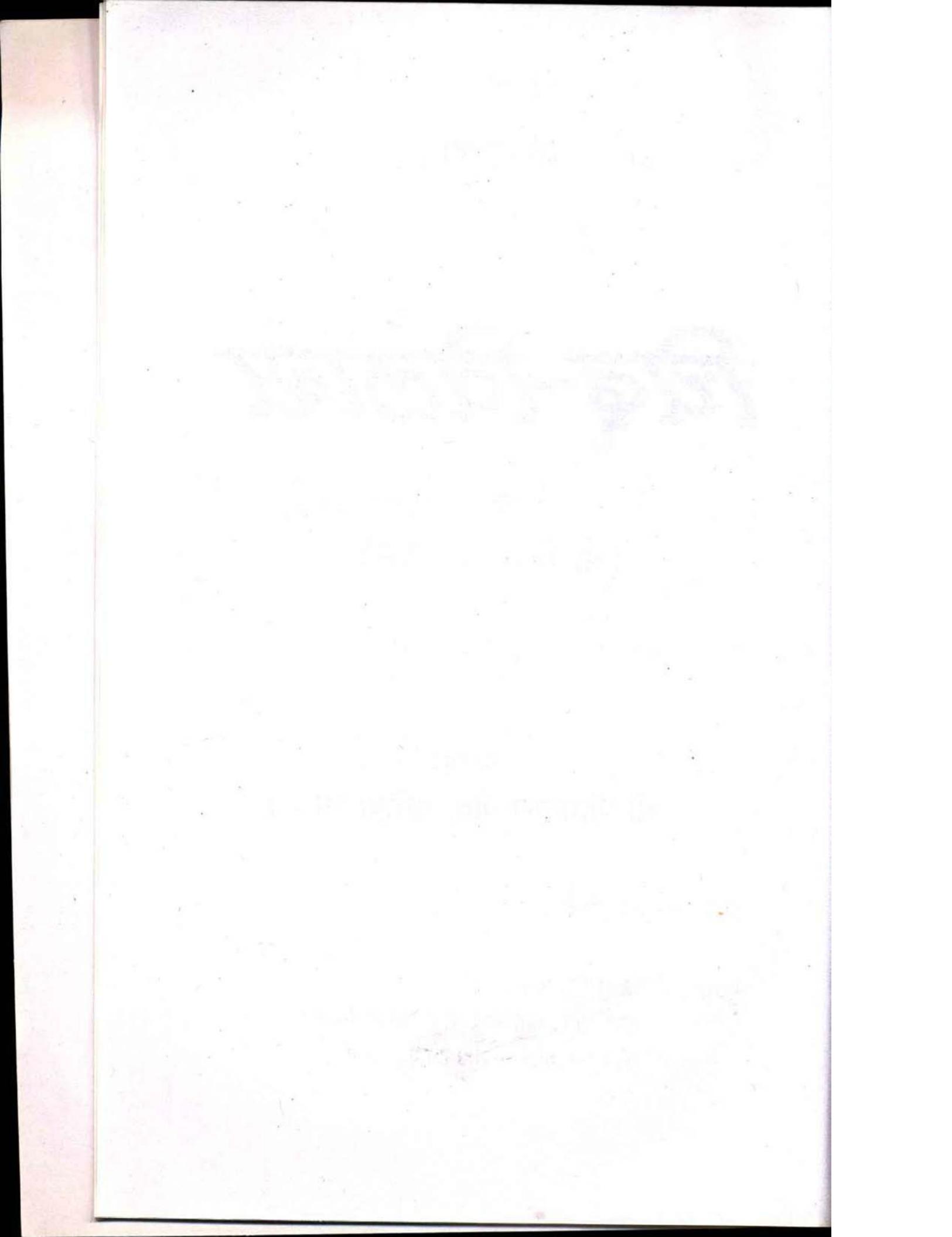
प्रकाशकीय

शाक्त साधना में भगवती पराशक्ति त्रिपुर सुन्दरी की साधना का महत्व सर्वोपरि है। इस साधना से सम्बन्धित बहुत से ग्रन्थ प्राप्त हैं, जिनमें अपने अपने ढंग से साधना सम्बन्धी विशद विवेचन प्राप्त होता है। श्री भगवती त्रिपुर सुन्दरी की साधना में श्री चक्रराज के पूजन का विधान है। इसमें पूजा को दो प्रकार से वर्णित किया गया है–बाह्य पूजा तथा आन्तरिक पूजा। भूर्जपत्र, रजत, एवं स्फटिक आदि पर यन्त्रोल्लेख कर पूजा करना बाह्य पूजा है तथा हृदयाकाश में पूजन करना आन्तरिक पूजा है इसी को समयाचार भी कहते हैं। साधक को आन्तरिक पूजा की योग्यता उन्नत अवस्था में प्राप्त होती है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इसी पूजा का विधान वर्णित है।

चिद्–विलास नामक ग्रन्थ का यह तृतीय पुनर्मुद्रण है। ग्रन्थ दुरूह है तथा गुरूमुख गम्य है। हिन्दी में उल्लिखित भूमिका एवं हिन्दी भावार्थ से विषय को सरल एवं सुबोध बनाने का प्रयास किया गया है। विश्वास है कि इस तृतीय पुनर्मुद्रण से विद्वज्जन एवं शाक्तसाधना में तत्पर साधक लाभान्वित होंगे।

आश्विन–नवरात्रि
सम्वत् - २०६६

विनीत
श्रीमती रेणु शर्मा
मंत्री
श्री पीताम्बरा पीठ दतिया (म.प्र.)

सम्मतिः

भगवन्! चि० सुरेशपाण्डेय द्वारा प्रेषितं भवत्कृतपुस्तकमदृष्टपूर्व प्राप्य, अतितरां मे प्रासीददन्तःकरणम्। यद्यपि लघुकायमिदं पुस्तकं सरलसुबोध कोमलकान्त पदावलीभिर्निबद्धं वर्तते तथापि परमगम्भीर परमार्थभावस्य अतिदुरूहतया विशेषतः सङ्केतितशब्दानां बाहुल्येन च मादृशाल्पबुद्धीनां कृते अतिदूरूहतरमेवाभविष्यत् यदि सङ्केतितशब्दैः गोपितमपि भावं प्रकाशयन्ती ग्रन्थस्य यथार्थाभिप्रायं स्फोटयन्ती श्रीचरणैः निर्मितेयं संक्षिप्त विवृतिः सहैव प्रकाशिता नाभविष्यत्।

भगवन्। विवृते रेवायंमहिमा यदयं चिद्विलासः मादृशाल्प बुद्धेरपि चेतसां विलासाय क्रीडनकमिवाभूत्।

भगवन्। क्षुरस्य धारावद् दुर्घटदुरूहपरमार्थमार्गे संतरणाय रथोद्धस्य (रथतत्वजस्यैव) अपेक्षा भवतीति मनसिनिधायैव मन्ये परमरोचकेन रथोद्धता छन्दसैवायं ग्रन्थो निबद्धो महात्मनेति। परमार्थमार्गानुसरणशीलानां साधकानां कृते विवृति भूषितोऽयं चिद्विलासः प्रशस्तरथस्य कार्यमवश्यं करिष्यतीति दृढं विश्वसिमि।

रङ्गनाथ पाठकः
विद्यावाचस्पतिः
संस्कृत संजीवन विद्यालय
चिड़ैयाँ टाँड, पटना–१ (बिहार)

भूमिका

अहमेवास पूर्वन्तु नान्यत्किंचिन्नगाधिप तदात्मरूपं चित्संवित् परब्रह्मके संज्ञकम् ७।३२।२।। दे० भा०।।

सच्चिदानन्दस्वरूपिणी राजराजेश्वरी भगवती श्री त्रिपुर सुन्दरी परतत्व हैं। चिद् संविद् परब्रह्म उन्हीं के पर्यायवाची हैं। तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि, आदि महावाक्यों में इन्हीं पराशक्ति के स्वरूप का निरूपण हैं। उपनिषदों में प्रतिपाद्य ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्म कोई दूसरा नहीं हैं। समस्त आध्यात्मिक दर्शनों की विचार धाराओं का पर्यवसान यहीं होता है। आगम शास्त्र में अनन्त तेजोराशिमयी अखिल ब्रह्माण्ड नायिका श्री विद्या ही प्रध ान रूप से विराजमान हैं। निगमागम का समस्त वाङ्मय इसी परब्रह्म की आराधना में संलग्न है। दर्शनों में इस पर तत्व के अधिक समीप शांकर वेदान्त ही पहुंचा है जिसका स्वरूप विवर्त्तवाद पर अवलम्बित है उसमें अद्वैत सिद्धान्त की सर्वाङ्गपूर्ण विवेचना जगद्‌गुरु ने की है। शाक्त सिद्धान्त भी अद्वैत ही मानता है परन्तु उसमें विवर्त एवं परिणाम दोनों को ही समान रूप से अपनाया है। जैसा कि संवित्प्रकाश का कथन है।

इति निर्मल बोधैक रूपे देह परिग्रहः। विवर्त्त परिणामाभ्यां द्वाभ्यामप्युप पद्यते।। विवर्त्तेप्य तथा रूपः तथा भासित्वमच्युत। परिणामे स एवत्वं सुवर्णमिव कुण्डले।। इसके अनुसार विवर्त्त एवं परिणाम दोनों को ही मान्यता दी है यही सिद्धान्त देवी भागवत् में प्रतिपादित हैः– मन्माया शक्ति संक्लृप्तं जगत्सर्व चराचरम्। साविमत्तः पृथङ्माया नास्त्येव परमार्थतः।। व्यवहार दृशा सैयं विद्या मायेति विश्रुता। तत्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्वमेवास्ति केवलम्।। अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् मेरी माया शक्ति से निर्मित है और यह माया मुझ (भगवती) से पृथक् नहीं। यह सम्पूर्ण चराचर व्यावहारिक

दृष्टि से सत्य है तत्व दृष्टि से केवल तत्व मात्र है इस प्रकार विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वेदान्त केवल विचार मात्र से ही ब्रह्म का निरूपण कर सका है श्रवण मनन, निदिध्यासन का नाम भर लिया है परन्तु क्रियात्मक रूप प्रस्तुत नहीं कर सका।

तन्त्र शास्त्र ने पूर्णरूपेण उस परतत्व की व्याख्या की है एवं क्रियात्मक रूपरेखा निश्चित कर साधकों का समुचित मार्ग प्रदर्शन किया है। अद्वैत भावना द्वारा पराशक्ति में अपना अर्थात् जीव का विलीनीकरण कर अद्वैतावस्था का सच्चा रूप दिखाया है। आगमीय सिद्धान्त के अनुसार साधक को सर्वप्रथम सद्‌गुरु की कृपा प्राप्त करना आवश्यक है तत्पश्चात् गुरूपदिष्ट शास्त्रोक्त मार्ग से साधना का आचरण। प्रातः कृत्य से लेकर सभी क्रम यथावत् करता हुआ साधक अपने लक्ष्य पर पहुंच जाता है। उपासना में श्रीयन्त्रराज के अर्चन का अत्यधिक महत्व है श्रीचक्रार्चन बाह्य पूजा है, आन्तरिक पूजा साधनमात्र है। मुख्य साध्य आन्तरिक पूजा अर्थात् परतत्व में लय ही है। जब तक लय की स्थिति प्राप्त नहीं होती तब तक बाह्य पूजा करना अत्यन्त आवश्यक है जैसा कि देवी भागवत् में पार्वती जी ने हिमालय को उपदेश दिया है :—

यावदान्तर पूजायामधिकारोभवेन्नहि तावद् बाह्यामिमां पूजां श्रयेज्जाते तु तां त्यजेत्।।

आभ्यन्तरा तु या पूजा सा तु संविल्लयः स्मृतः। संविदेव परं रूपमुपाधि रहितं मम।। अतः संविदिमद्रूपे चेतः स्थाप्यं निरन्तरम्। संविद्रूपातिरिक्ततुं मिथ्यामायामयं जगत्।। अर्थात् हे पर्वतराज मेरी आन्तर पूजा यही है कि संविद्रूपिणीपरा शक्ति में अपना लय हो। अतएव मेरे इस चिद्रूप में ही अपने मन को स्थापित करना चाहिये यही परा पूजा है और

इस पराशक्ति के अतिरिक्त मायामय संसार मिथ्या है। इस प्रकार इस पूजा में विवर्तवाद को ही माना है इसके अधिकारी बिरले ही भाग्यवान् विरक्त परमहंस ही होते हैं। शुकदेव, वशिष्ठ, सनकादि इसी मत के अनुयायी थे। अस्तु बाह्य पूजन के ग्रन्थ एवं पद्धतियाँ तो अधिकाधिक उपलब्ध है किन्तु तान्त्रिक जगत् में आध्यात्मिक पूजन के ग्रन्थों का अभाव सा ही है। प्रस्तुत ग्रन्थ चिद्विलास में आन्तर पूजा का सर्वाङ्ग पूर्ण विशद विवेचन है। स्नान, भूतशुद्धि, न्यास, पूजोपचार, बलिदान होम आदि बाह्यपूजा के सभी अंङ्गों का क्रियात्मक रूप से आन्तरपूजा में किस प्रकार समन्वय होता है यही इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है, यही साधना का चरम लक्ष्य है इसे प्राप्त कर साधक को जीवन मुक्तावस्था प्राप्त होती है जिससे वह सर्वदा ब्रह्मानन्द में लीन रहता है, यही मानव जीवन की सर्वोच्च सफलता है। ग्रन्थ के आरम्भ में पराशक्ति का स्वरूप जैसा कि सूत्रकार ने माना है। चितिः स्वतन्त्रा विश्व सिद्ध हेतुः, अर्थात् वह चिति परतत्व अपने आप में परिपूर्ण है एवं समस्त जगत् का मूल कारण है उसी महामहिम शालिनी भगवती के स्वरूप का निरूपण प्रथम श्लोक में किया गया है। तथा श्री गुरुदेव के साथ उनका तादात्म्य वर्णित है। द्वितीय में प्रातःकृत्य जैसा कि तन्त्र शास्त्रों में वर्णित हैः ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय, कुलवृक्षं प्रणम्य च शिरः पद्मे सहस्रारे चन्द्रमण्डल मध्यगे। अकथादि त्रिरेखीये हंसमंत्र सुपीठके, ध्यायेन्निज गुरुं बीरो रजताचल सन्निभम्।। इत्यादि इस पूजन में सहस्रार स्थित ऊर्ध्व त्रिकोण (चन्द्र, सूर्य अग्नि) के मध्य में महाबिन्दु का ध्यान ही गुरुपादुका जप है। तृतीय में शक्तितत्व रूपी तट ही अद्वैत सागर को चारों ओर से मर्यादित किये हुये है। जैसाकि प्रत्यभिज्ञा हृदय में कहा है नित्यं तस्य निरङ्कुश विभवंवेलेववारिधे रुन्धे। इसी सागर में मनोमलत्याग ही स्नान है क्योंकि नवारिणा

शुद्धयतिचान्तरात्मा। चौथे में शक्ति को विश्वमोहनी माया के रूप में रात्रिरूपी माना है, शिव को प्रकाशरूपी दिवस। इन दोनों का मिलन ही सामरस्य है यही पराशक्ति भगवती श्रीविद्या का स्वरूप है इसीलिए यहां इन्हें सान्ध्य देवता कहा है। पाँचवें में शिव को सूर्य एवं शक्ति को किरण का रूप बताया है तथा इसी शिव शक्तिमयी वेदिका पर अहंभाव द्वारा परतत्व का चिन्तन ही पूजन बताया है यही अहंभाव का लक्षण है। प्रकाशस्यात्म विश्रान्तिरहंभावः प्रकीर्तितः। प्रत्यभिज्ञाः।। छठवें में इस क्षणभंगुर अस्थिचर्मादिमय शरीर को ही साधना का आश्रय माना है इसी शरीर में आत्मतत्त्व पूजागृह है वहीं परतत्त्व का अनुसंधान ही अर्चन है। सातवें में पर देवता का निवास स्थान हृदय माना गया है। इस हृदय शब्द के पूज्य महाराज ने दो स्थान माने हैं– अनाहत एवं सहस्रार इन दोनों स्थानों पर अर्चन करने वाले पाश मुक्त होकर शिव स्वरूप प्राप्त करते हैं जैसा कि कहा गया है– पाशबद्धोभवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः। आठवें में मानाभिमान रूप विकल्प बुद्धि का विषय वर्णित है। नवम में पर देवता का आसन ३६ तत्व के ऊपर बताया गया है। षट्चक्रों में प्रत्येक चक्र में छः–छः तत्व हैं इस प्रकार इन छः चक्रों के ऊपर ही वे विराजमान है जैसा कि सौन्दर्य लहरी में :– निषण्णाषण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्। तथा श्री विद्या पञ्चदशी के भी ३६ अक्षरों का छः–छः अक्षरों के समूह में षट्चक्रों में विभाजन है इस प्रकार ३६ तत्व एवं षट्त्रिंशदक्षरी महाविद्या पर आत्मतत्व की स्थिति है यहीं सांसारिक विषय का पर्यवसान होता है।

दशवें में जब वह पराशक्ति बहिर्मुखी वृत्ति में रहती है तब जीव संसार हो जाता है और जब बहिरङ्गता को त्याग कर अन्तर्मुखी वृत्ति से अन्तरङ्गता में स्थित होती है, यहीं यहाँ प्राणायाम के स्वरूप से निर्देशित है।

ग्यारहवें में भगवती के आसन का विषय है। यन्त्रार्चन में श्रीचक्रपर देवता को तीन आसन समर्पित करते हैं "श्रीचक्रासन सर्वमन्त्रासन, साध्य सिद्धासन" वे ही यहाँ त्रिगुणित होकर षट्चक्रों के ऊपर अर्द्धचन्द्रादि नव चक्र ही भगवती के आसन हैं।

बारहवें में ऊर्ध्व त्रिकोण में योनिस्वरुपी महाबिन्दु का चिन्तन ही काम कला है, इसी के अनुसार सौन्दर्य लहरी में कामकला का निरूपण है यथाः—

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्यतदधो, हरार्द्ध, ध्योयेद्यो हरमहिषिते मन्मथ कलाम्।

तेरहवें में कामकला स्वरूपी आत्मतत्व में पञ्चतत्वों में क्रमशः उदय एवं अस्त का ज्ञान ही मातृका न्यास है।

चौदहवें में महाशक्ति कुण्डलिनी का मेरुदण्ड सूक्ष्म मार्ग द्वारा संवित् तत्व में लय करना वशिन्यादि अष्टवाग्देवता न्यास है।

पन्द्रहवें में मन सहित एकादश इन्द्रियों का स्वयं प्रकाशस्वरूप परब्रह्म में लीन करना ही पीठन्यास है।

षोडशवें में तीन त्रिकों में विभाजित मातृका ही पाद्योपचार तथा मातृका का क्रमशः तुर्यावस्था में लय अर्ध्य वर्णित है।

सत्रहवें में सम्पूर्ण तत्वों एवं चक्रों के प्रकाशक भगवान् सदाशिव का वर्णन है पूजन में भगवती के मञ्च फलक के रूप में उनका चिन्तन है।

यथा :— सदाशिवमयैक मञ्च, फलकाय नमः।

अठारहवें में योग्य अधिकारी प्रमाता का प्रमेय अर्थात् परब्रह्म में

समर्पण ही आवाहन है। चक्रार्चन में पराशक्ति स्वरूपिणी कुण्डलिनी महाशक्ति के द्वारा षट्चक्रों का भेदन कर नासापुट से निकालकर श्री विद्या के तेज को श्रीचक्र पर आवाहित करते हैं। इस आवाहन में वहीं कुण्डलिनी अन्तर्मुखी होकर संविद् तत्त्व के साथ अभेद स्थापित करती है।

उन्नीसवें में ५ महाभूतों के अनुभव जो सूक्ष्म शरीर में होते हैं उन्हीं का नाम तत्त्वोदय है। इन तत्वों का क्रमशः लय करना ही मानसोपचार है।

बीसवें में काल के मानदण्डों में तिथियाँ ही प्रधान मानी जाती हैं। वे प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमा अथवा अमा तक कुल पन्द्रह होती है, वहीं पन्द्रह स्वर है। उनके मध्य में (अः) स्वरूपिणी श्री सुन्दरी में अपना लय करना ही नित्यवासर कला का अर्चन है। नित्यवासर का अर्थ है कि जहां सर्वदा प्रकाश रहे। गीता में भी परंधाम को नित्य प्रकाश के ही रूप में माना है। यथाः—न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः, यद् गत्त्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

इक्कीसवें में उस अनिर्वचनीय परतत्व में श्रीयन्त्र के सम्पूर्ण आवरण देवताओं का संहारक्रम से क्रमशः मूलबिन्दु में लय की भावना ही पूजन है।

बाईसवें में (तस्य भासासर्वमिदं विभाति) यह चार प्रकार का संसार उसी परतत्व में भासित हो रहा है और चार अवस्थाऐं भी। इन सबका तुर्यातीत पद में लय करना ही बलिदान है।

तेईसवें में पञ्चप्राणमय संविद्तत्व जो कर्मेन्द्रियों द्वारा बाह्य संसार

का अनुभव कर रहा है, वहीं अन्तर्मुखी होकर सामरस्य रूप से तादात्म्य स्थापित करता है, यहीं इसका नीराजन है।

चौबीसवें में "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" के अनुसार मन वाणी से अगोचर निराकार तत्व में आत्मतत्त्व का विश्राम ही जप बताया है।

पच्चीसवें में बताया है कि यह सम्पूर्ण संसार उस पराशक्ति के द्वारा प्रतिविम्बित है और साधक सर्व देवीमयं जगत् देखता है यही दर्पण उपचार है।

छब्बीसवें में सहस्रार का वर्णन है कि वह सबका आच्छादक है, साधकों के त्रिबिध ताप को दूर करता है, उसी का नाम परमव्योम है, उसका चिन्तन ही छत्रार्पण है।

सत्ताईसवें में बताया है कि संविद् तत्त्व का स्पन्दन चार क्रम से होता है तथा वह परतत्त्व पांच रूप से परिणत होता है इस प्रकार इन तत्त्वों के संचालन से जो कम्प उत्पन्न होता है वही चामर डुलाना है।

अट्ठाईसवें में सांसारिक शरीर में स्त्री, धन, पुत्र की इच्छा वाला जीवात्मा जब सब एषणाओं का त्यागकर षट्त्रिंशत् तत्व से परे संविद् तत्त्व में सर्वात्मना समर्पण करता है यही पूजा का निवेदन है।

उन्तीसवें में सम्पूर्ण तत्त्वों से परे प्रसन्नावस्था में गुरुस्वरूपी भगवान् शिव का चिन्तन करना ही परब्रह्म के अभिव्यञ्जक पञ्च तत्वों का शोधन है।

तीस और इकतीसवें में होम का विधान इस प्रकार है कि गुरु कृपा से निर्मल ज्ञानाग्नि प्राप्त करो और उसमें समस्त कर्म बन्धनों का होम

कर उन्हें भस्मसात् करो। उक्त अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए चित्त की लगन ही धौंकनी है तथा तीव्र उत्कण्ठा ही अङ्गार हैं।

बत्तीसवें में साधना की सफलता श्री गुरुदेव पर ही निर्भर है। परतत्व तक पहुंचने के वे माध्यम है तथा इष्टदेव की अनुग्रहात्मक मूर्ति है। उनके द्वारा चाक्षुषी दीक्षा ग्रहण करना इस पूजा के लिए आवश्यक है। चाक्षुषी दीक्षा का लक्षण तन्त्रों में इस प्रकार हैं :– शिवोऽहमितिनिश्चित्य वीक्षणं करुणार्द्रया। दृशा सा चाक्षुषी दीक्षा सर्व पाप प्रणाशिनी।।

तेतीसवें में उन्मनी अवस्था का वर्णन है उस अवस्था में स्वाभाविक समाधिस्थिति में साधक पहुंच जाता है और उसे शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है वहां पर जीव और परमात्मा का ऐक्य चिन्तन ही पूजन है।

चौंतीसवें में मन सहित पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, यही षड्दर्शन है इनका परा में लय ही अर्चन है जैसा कि प्रत्यभिज्ञा हृदय में कहा है:– तद्भूमिका सर्वदर्शन स्थितयः। ६ वाँ सूत्र।

पैतीसवें में जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय यह चारों अवस्थायें जीव एवं ब्रह्म की व्यष्टि एवं समष्टि रूप से होती हैं इनसे भिन्न तुर्यातीत अवस्था है वहाँ दोनों एक ही यही ऐक्य बुद्धि ही परा पूजा है।

छत्तीसवें में खेचरी मुद्रा का वर्णन है। यह स्थिति विघ्नरहित है इसी में जीव जीवन्मुक्ति का अनुभव करता है। मन, प्राण, एवं दृष्टि, ब्रह्ममय हो जाती हैं यन्त्रार्चन में खेचरी मुद्रा द्वारा उद्‌वासन कर श्री चक्र स्थित परतत्व को साधक आत्मसात् करता है।

सैंतीसवें में उपासना के सिद्धान्त का निरूपण करते हैं। उस परतत्व के जान लेने पर जिस प्रकार रज्जु का यथार्थ ज्ञान होने पर उसमें से सर्पत्व के भ्रम की निवृत्ति हो जाती है उसी प्रकार मिथ्या

मायामय संसार की निवृत्ति हो जाती है। तथा पराशक्ति के स्वरूप का अनुभव होता है। जैसा कि देवी भागवत में कहा है :– "यदज्ञानात् जगद्भाति रज्जु सर्पस्रगादिवत्। यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोति नुमस्तां भुवनेश्वरीम्"।।

अड़तीसवें में ग्रन्थकर्ता दैशिक प्रवर ने गुरूपासक दीक्षित शिष्यों को इस परा पूजा की सिद्धि का आशीर्वाद दिया है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में कुल ३८ श्लोकों में सम्पूर्ण रहस्य आ गया है। इस ग्रन्थ के इसी अद्वैत तत्व का निरूपण आगमीय सिद्धान्त की अमूल्य निधि श्री विज्ञान भैरवाचार्य (श्री शिव) द्वारा निर्मित उन्हीं के नाम से विख्यात विज्ञानभैरव नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में उपलब्ध है, जिसे समस्त तान्त्रिक जगत् उसी प्रकार मानते हैं जैसे वैदिक वेद को। वैसे निगम से आगम भिन्न नहीं है, उसी का सहोदर भ्राता है, अस्तु। यह ग्रन्थ भी सनातन धर्मावलम्बियों के लिए वेद तुल्य ही आदरणीय है। यह ग्रन्थ सरल एवं सुबोध अनुष्टुप् छन्दों में वर्णित है। उसी प्रकार के अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन एवं परतत्व में आत्मा का विलय ही इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। चिद्विलास के समान इसमें भी संसार को मायामय मिथ्या माना गया है यथा:–

"तदसारतयादेवि! विज्ञेयं शक्रजालवत्।
मायास्वप्नोपमं चैव गन्धर्वनगरभ्रमम्।।"

इस प्रकार संसार को इन्द्रजाल एवं स्वप्न तथागन्धर्व नगर आदि दृष्टान्त सब अद्वैत वेदान्त के ही हैं। इसी प्रकार वेदान्त सिद्धान्त के समान ही जीव को भी नित्य शुद्ध बुद्ध स्वभाव वाला बताया गया है एवं सांसारिक बन्धनों से रहित प्रतिपादित किया हैं यथा :–

"नमे बन्धो न मोक्षो में भीतस्यैताः विभीषिका।
प्रतिबिम्बमिदं बुद्धेः जलेष्विव विवस्वतः।।

इस प्रकार विवर्त्तवाद ही तन्त्र के इस महान् ग्रन्थ में वर्णित है जिसमें संसार केवल अध्यास द्वारा ही भासित है। परा पूजा का सम्पूर्ण विषय जैसाकि प्रस्तुत ग्रन्थ चिद्विलास में है वही पूर्णरूपेण इसमें विद्यमान है। परा पूजा की परिभाषा एवं महिमा में विज्ञान भैरव में स्पष्ट लिखा है "पूजा नाम न पुष्पाद्यैर्यामतिः क्रियते दृढ़ा। निर्विकल्पे परे व्योम्नि सा पूजा ह्यादराल्लयः।।" इस प्रकार लय योग जो इस ग्रन्थ का प्रधान प्रतिपाद्य विषय है प्रस्तुत ग्रन्थ ने उसी को माना है। यत्र तत्र स्थलों पर दोनों ग्रन्थों में इतना अधिक साम्य है कि ज्यों के त्यों शब्दों एंवं भावों का प्रयोग किया गया हैं जो निम्न उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत हो जायगा :–

"माया विमोहनी नाम कलायाः कलनं स्थितम्। वि० भै० ६५ श्लोक "सा निशा सकल लोक मोहिनी। चि० वि ४ श्लोक"

"देहान्तरे त्वग्विभागं भित्तिभूतं विचिन्तयेत्। वि०भै० ४८ श्लोक"

"त्वक्पलास्थिमय भित्ति भावितं। चि०वि० ६ श्लोक।"

"खेचर्या दृष्टि काले च परावाप्तिः प्रकाशते। वि०भै०।"

"सा शिवत्व समवाप्तिकारिणी खेचरी भवति खेदहारिणी। चि० वि० ३६ श्लोक"

अस्तु विस्तार भय से अधिक न लिखकर केवल यही कह देना पर्याप्त है कि यह दोनों ग्रन्थ अधिक समीप हैं। तन्त्र जगत् के अद्वितीय आचार्य दैशिक प्रवर श्री भास्कर राय ने नित्या षोडशिकार्णव' ग्रन्थ में इन दोनों ग्रन्थों के उद्धरण दिये हैं। आठवें उल्लास में :– "महापद्मवनान्तस्थे वाग्भवे गुरु पादुकाम्, आप्यायित जगद्रूपां परमामृत वर्षिणीम्।।" श्लोक की व्याख्या में गुरुपादुका का विशद विवेचन करते हुए शिव शक्ति

सामरस्य स्वरूपिणी उस पर तत्त्वमयी श्री परास्बा एवं श्री नाथ का ऐक्य प्रतिपादित करते हुये प्रस्तुत ग्रन्थ चिद्विलास का प्रथम श्लोक जिसमें महागुरुपादुका का विषय वर्णित है तथा गुरु प्रसन्नता से ही साधक कृत कृत्य हो जाता है इसका प्रतिपादन करने वाला २६ वॉ श्लोक प्रमाण रूप से प्रस्तुत किया हैं। तथा उसी नित्या 'षोडशिकार्णव' में विज्ञान भैरव का ३२ वां श्लोक जो इस प्रकार है कि:-

"शिखिपक्ष चित्ररूपैः मण्डलैः शून्य पञ्चकै ध्यायतो उत्तरे शून्ये परं व्योम तनुर्भवेत्।" अस्तु विज्ञान भैरव एवं चिद् विलास इन दोनों ग्रन्थों का रचना काल भी भास्कर राय के पूर्व ही स्थिर होता है, यह निर्विवाद सिद्ध है। नित्या षोडशिकार्णव में भी पूजा संकेतों में परा पूजा ही सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। यही इन दोनों ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय है। चिद्विलास के रचियता के विषय में इतना ही परिचय ग्रन्थ की महिमा को उद्घोषित करने में पर्याप्त है, अस्तु।

इसी प्रकार का एक ग्रन्थ कविकुल गुरु कालिदास का चिद्गगन चन्द्रिका नामक काव्य है इसमें भी इसी छन्द में ३०५ श्लोकों द्वारा भगवती आद्या का परतत्व के रूप में विशद वर्णन किया है। दोनों ग्रन्थ एक ही छन्द में एक ही सिद्धान्त का निरूपण करते हैं। दोनों के कतिपय श्लोकों से दोनों का साम्य स्पष्ट है।

चिद्गगन चन्द्रिका :-

देवि तद्वय कला विमिश्रया सामरस्यपदमेति या स्थितिः।

बिन्दु नाद समवेद्य वेदकान्तर्गता तव मूर्तिरत्र सा।।

चिद्विलास :-

सामरस्यमिह सन्धिरेतयोः श्री परैव ननु सन्ध्य देवता।

चिद्गगन ....

यत्प्रकृत्यवधि तत्वमण्डलं क्ष्मामुखं परिमिता ग्रहास्फुटम्।

चिद्विलास :–

तत्व जालकमिदं शिवावधि क्ष्मामुखं सकलमासनं मतम्।

चिद्गगन चन्द्रिका :–

यत्स्मृतौ स्फुरति वस्तु बिम्बितं स्वप्न सम्प्रथमकल्पयोश्चयत्। बिम्बवज्जयेमिह तन्निदर्शना त्वन्निमग्नमुदितं जगत्त्वया।

चिद्विलास :–

बिम्बितं स्फुरति यत्र संविदा रूपमान्तर मिदन्तया बहिः। विश्वमेतदखिलं चराचरं दर्पणं ह्रदय दर्पणं परम् इत्यादि।

इस प्रकार सम्पूर्ण सिद्धांत एवं रथोद्धता छन्द प्रस्तुत ग्रन्थ एवं चिद्गगन चन्द्रिका के समान हैं। कालिदास ने काली को परतत्व स्थानीय माना है, इस ग्रन्थ में "श्रीपरैवननु सन्ध्या देवता" कह कर श्री विद्या को
।

इस प्रकार दोनों एक है केवल एक सिद्धान्त में अन्तर है। कालिदास ने परिणामवाद प्रतिपादन किया है और इन्होंने विवर्त्तवाद का।

रज्जु सर्प का दृष्टान्त ग्रन्थ में स्पष्ट उल्लिखित है, यथा :–

यत्स्वरूप महिमा विकल्पतः। शक्तिचक्रमिह रज्जुसर्पवत्।

कालिदास ने इस छन्द का प्रयोग सीता स्वयम्बर में एवं कुमार सम्भव के आठवें सर्ग में शंकर पार्वती के मिलन प्रसंग में प्रयुक्त किया है। अस्तु, परतत्व के वर्णन में इस छन्द ती उपादेयता सिद्ध है, अतएव

यहां भी शिव शक्ति के सामरस्य में यही छन्द ग्रहण किया गया है। इसी छन्द में गुरुपादुका पञ्चक स्तोत्र भी वर्णित है, उसमें कंवल ५ ही श्लोक हैं परन्तु वे साधना जगत् के पञ्चप्राण माने जाते हैं। सहस्रार स्थित द्वादश दल कमल के अन्तर्गत ऊर्ध्व त्रिकोण में परतत्व स्वरूप श्री गुरुदेव का चिन्तन करना प्रातः कृत्य में प्राथमिक कार्य है।

इस स्तोत्र के कर्ता भगवान् पञ्चमुख शिव है जिनके प्रत्येक मुख से एक–एक श्लोक निकला है।

चिद्गगन चन्द्रिका की शैली दुरूह है, अर्थ गाम्भीर्य उससे भी अधिक हे, जबकि इस ग्रन्थ की शैली सरस एवं सुबोध है। प्रसाद गुण से ओत–प्रोत है इतने सीधे–सादे शब्दों मे अध्यात्म तत्व का निरूपण किसी भी ग्रन्थ में नहीं किया गया है। इसमें दो मत नहीं हो सकते यही शैली पादुका पञ्चक स्तोत्र की भी है।

इस ग्रन्थ में आन्तर पूजा का सर्वाङ्गीण विवेचन है जैसा कि शारदा तिलक टीका में निर्दिष्ट है :–

स्वात्मैव देवताभोक्ता मनोज्ञा विश्व विग्रहा न्यासस्तु देवतात्मत्वात्स्वात्मनो देहकल्पना।। जपस्तनमयतारुप भावनं सम्यगीरितम्। होमो विश्वविकल्पा नामात्मन्यस्त मयोमतः।। इत्यादि

यहाँ भगवान् शिव को प्रकाश रूप से निर्देशित किया है :– "वासरः सखलु सर्व बोधकः इसी प्रकार वरि वस्या रहस्य के तृतीय श्लोक में :–

स जयति महाप्रकाशो यस्मिन् दृष्टे न दृश्यते किमपि। कथमिव तस्मिन् ज्ञाते सर्व ज्ञातं किलोच्यते वेदे।

अर्थात् महाप्रकाश भगवान् शिव का साक्षात्कार ही मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है जिसके होने पर सभी कुछ ज्ञात हो जाता है। इन शिव के निरङ्कुश वैभव को व्यवस्थित करने वाली शक्ति है, जैसाकि ग्रन्थ में :–

तीर्थमद्वय सुधारसोदधेर्वारितं निज विमर्श वेलया।

अर्थात् वह सर्वव्यापी अद्वैत तत्व शक्ति के द्वारा मर्यादित है उसी के योग से शिव शक्तिमान् होते है जैसा कि सौन्दर्य लहरी में :–

शिवः शक्तया युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं। अर्थात् शिव स्पन्दन विहीन शव हैं बिना शक्ति के उनका हिलना–डुलना भी सम्भव नहीं। इसी प्रकार श्री स्वामी जी ने अपने केनोपनिषद् भाष्य में उमा शब्द की व्याख्या की है :– उं परशिवं भाति परिच्छिनत्तीति उमा। इसी अभिप्राय को बरिबस्या रहस्य में भी व्यक्त किया है :–"नैसर्गिकी स्फुरता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः। तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति च"।।

इन दोनों तत्वों के मिलन को ही सामरस्य कहा गया है, यही पराशक्ति भगवती का दिव्य रूप है, वह निष्कल निरञ्जन निराकार है अन्ततोगत्वा जीवात्मा का परतत्व में लय ही ब्रह्मात्मैक्य स्वरूपिणी श्री त्रिपुर सुन्दरी की उपासना है, यह जन्म जन्मार्जित पुण्यों का फल हैं, जैसा कि गीता में :– "अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्" के अनुसार इसके साधक को संसार में पुनः नहीं आना पड़ता।

चरमे जन्मनि यथा श्री विद्योपासको भवेत्। ललिता सहस्रनाम।

इस प्रकार यह साधना निगमागम की सारभूत मूर्ति है उसका प्रतिपादक यह चिद्विलास ग्रन्थ अद्वितीय है। भाषा यद्यपि सरल है परन्तु विषय अत्यन्त कठिन। इसमें चित्तवृत्ति निरोधात्मक योग, पराशक्ति प्रतिपादक आगम, शास्त्र ब्रह्म की व्याख्या करने वाला वेदान्त, ये तीनों एकाकार होकर क्रियात्मक ब्रह्मज्ञान द्वारा श्री त्रिपुरा तत्व का प्रतिपादन कर रहे हैं। भगवती के आध्यामित्क विग्रह के यही तीन पुर हैं। इन्हीं तीन विषयों के पारंगत विद्वान् एवं अनुभव ही इस ग्रन्थ की गुत्थियां सुलझा सकते हैं। सौभाग्य से पूज्य आचार्य चरणों ने अस्वस्थ अवस्था में भी इस

ग्रन्थ पर प्रबोधिनी विवृत्ति की रचना की, जिसमें सांकेतिक एवं पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या द्वारा ग्रन्थ के विषय को सुगम एवं बोधगम्य बना दिया। पूज्यपाददेशिक शिरोमणि ने अपनी इस विवृत्ति द्वारा परा पूजन सम्पन्न कर नीराजन प्रारम्भ कर दिया है। जिसके आलोक से दिग्दिगन्त आलोकित हो रहे हैं। हम लोगों को केवल घण्टी बजाने का कार्य दिया गया हे, जिसे हम लोग प्रसाद के लोभ से प्रेरित होकर कर रहे हैं।

इस ग्रन्थ रत्न की प्राप्ति श्री कुंबर बलबीर सिंह जी से हुई है कुंवर साहब प्रख्यात साहित्यकार एवं श्री महाराज जी के प्रमुख सेवक हैं। श्री मदन मोहन गौड़ जी ने प्रकाशनार्थ सम्पूर्ण व्यय वहन कर परिषद् को उपकृत किया है। संस्कृत परिषद् के मुख्य सदस्य श्री ओंनारायण द्विवेदः व्याकरणाचार्य ने ग्रन्थ की प्रतिलिपि करने में प्रशंसनीय परिश्रम किया है श्री ललिता प्रसाद द्विवेदः शास्त्री का भी योगदान प्राप्त हुआ है। ये सब महानुभाव परिषद् के अभिन्न अङ्ग हैं, फिर भी शिष्टाचारानुरोधेन यह परिषद् आभार प्रदर्शन पूर्वक इन सबको अनेकशः धन्यवाद देती है। इस प्रकाशन द्वारा भगवती गीर्वाण भारती की श्री वृद्धि हो एवं साधकगण अपने अभीष्ट को प्राप्त करें यही हमारी कामना है।

अक्षय नवमी
सम्वत् २०२६
बुधवार

ब्रजनन्दन शास्त्री
साहित्याचार्य
मंत्री
श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद,
दतिया (म.प्र.)
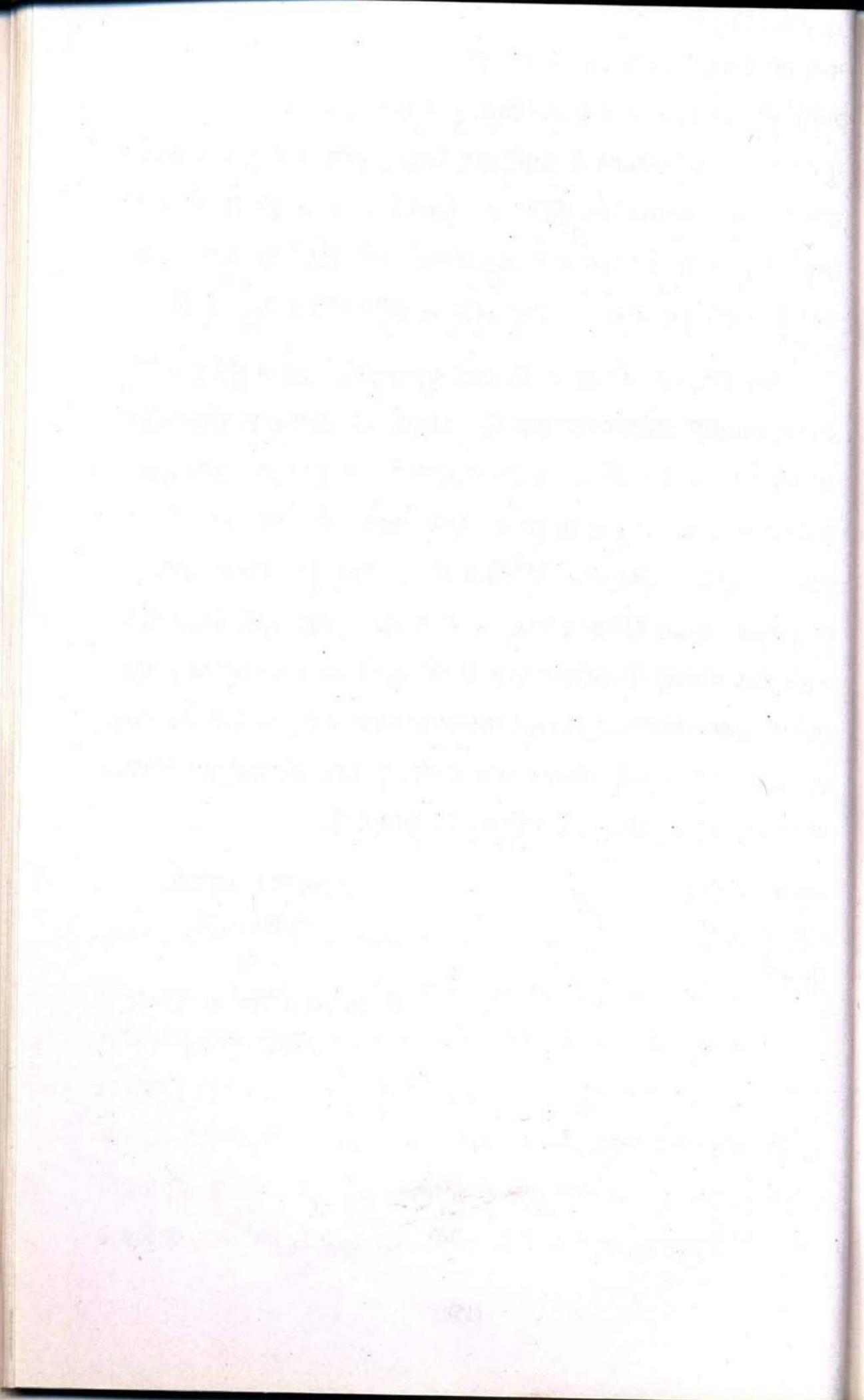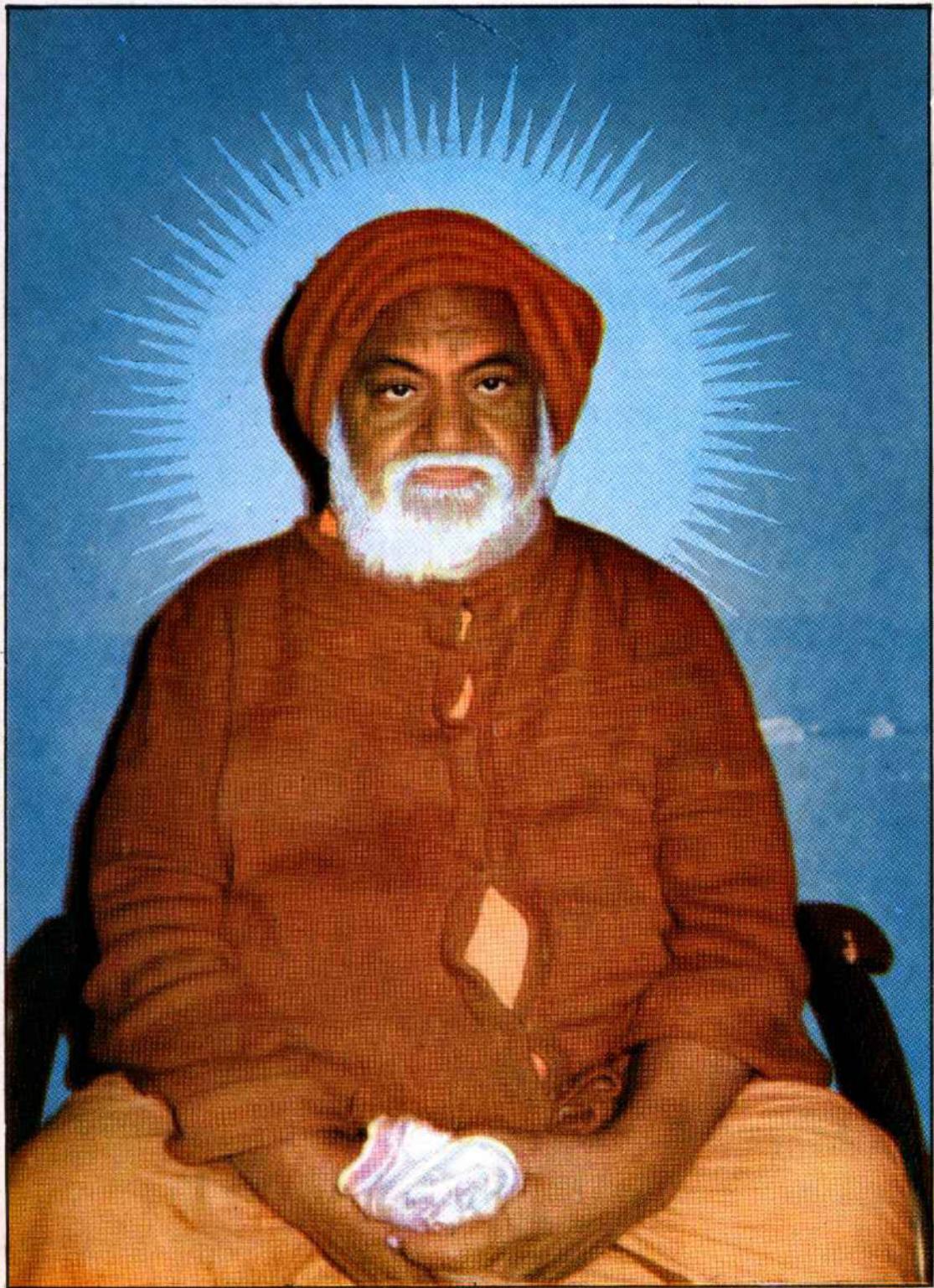
श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वराः परम पूज्य श्री १००८
श्री स्वामी जी महाराज वनखण्डेश्वर, दतिया
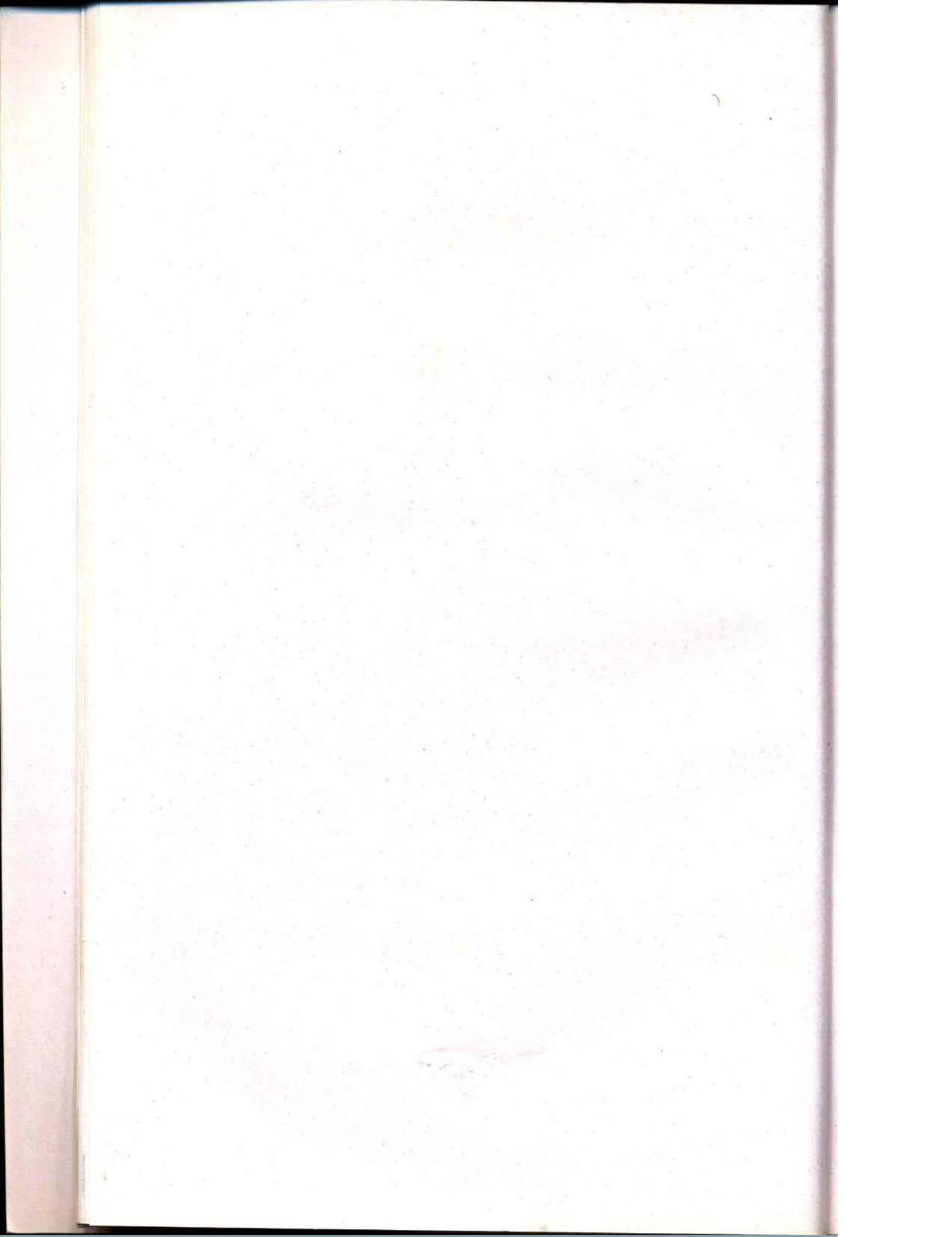
।। श्रीपराम्बायै नमः ।।

अथ चिद् विलासः

स्वप्रकाश शिवमूर्तिरेकिका
तद् विमर्शतनुरेकिका तयोः।
सामरस्य वपुरिष्यते परा
पादुका परशिवात्मनो गुरोः।।१।।

टीका :-

(मंगलाचरणम्)

नत्वा गुरुपदाम्भोजं शुद्धं ज्ञानप्रदं नृणाम्,
विवृतिं चिद्विलासस्य कुर्वेस्वात्मप्रबोधिनीम्।

अयं चिद्विलास नामा ग्रन्थः केनचिद् महात्मना श्री विद्यायाश्चरमलक्ष्य भूतानि तत्त्वानि प्रकटीकर्तु श्री विद्यातत्वं च बोधयितुमष्टत्रिंशच्छ्लोकैरुप निबद्धः। तदुक्त सांकेतिक शब्दानामर्थाव– बोधाय संक्षिप्तं विवरणं क्रियते।

स्वप्रकाशेति :- परतत्त्वस्य प्रकाशात्मिका एकिका–एकामूर्तिः शिवः तद्विमर्श रूपा तनुरपि एकिका एकैव सा शक्ति पदेनोच्यते प्रकाश विमर्शाभ्यां नाम रूपात्मकं सर्व प्रपञ्चजातमाविर्भूतम्। तयोः प्रकाशविमर्शयोः सामरस्य रूपं बपुः ब्रह्मस्वरूपिणी पराशक्तिरिष्यते इच्छाविषयी क्रियते सैव परशिवात्मनो गुरोः पादुकारूपेण स्मर्यते साधकैः। परगुरु पादुकामन्त्रो गुरुमुखादवगन्तव्यः।

(ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः हसखफ्रें ह स क्ष म ल व र यूँ श्री ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं क० १५ह० १५ सौः क्लीं ऐं ह्रीं श्रीं स ह ख फ्रें स ह क्ष म ल व र यीं हंसः शिवः सोहं हसौ. स्हौः श्रीं परशिव पादुकां

पूजयामि नमः) गुरुस्मरणादेव सर्वाः सिद्धयोभवन्ति तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् इति श्रुतेः' ।।१।।

रथोद्धताछन्दस्तल्लक्षणं यथा–रान्नराविह रथोद्धता लगौ।

भाषार्थ - स्वप्रकाश रूप एक मूर्तिका नाम शिव है और उसकी विमर्श रूप दूसरी मूर्ति जिसे शक्ति कहते हैं, दोनों के सामरस्य रूप का नाम पराशक्ति है। पर शिवात्मक गुरु की पादुका रूप से जिसका स्मरण होता है ।।१।।

"एकोऽहं बहुस्याम्" इति श्रुतिवचनात् परम बिन्दुसकाशात् अग्निचन्द्र सूर्यनामकं बिन्दुत्रयमाविर्भूतम् तस्मादेव त्रय समुदायात् सर्ववस्तुजातं प्रकाश्यं नीतं तदेवाह चित्रभानुरिति :–

चित्रभानु शशिभानुपूर्वकं
त्रित्रिकेण नियतेषु वस्तुषु।
तत्तदात्मकतया विमर्शनं
तत्समष्टि गुरुपादुका जपः।।२।।

टीका :-

पूर्वस्मिन् पद्ये प्रकाशविमर्शात्मकं शिव शक्तिमयं तत्वं निर्दिष्टं तस्मादेव चित्रभानुः अग्निबिन्दुः शशीचन्द्रबिन्दुः भानुः सूर्यबिन्दुः इत्येतत्पूर्वकेण त्रिकेण समुदायेन सर्वमाविर्भूतम्। प्रकाशाद् वामा–ज्येष्ठा–रौद्री–शक्तयः आविर्भूताः। विमर्शात् इच्छाज्ञानक्रियास्तथा ब्रह्मविष्णुरूद्रा पुरुषशक्तयः सञ्जाता त्रित्रिक पदेनैतत्सर्वं गृह्यते।

गीतायाञ्चः-

यदादित्य गतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजोविद्धि मामकम्।। इत्यनेनोक्तं समन्वितं भवति। नियतेषु सर्ववस्तुष्विदं त्रिकं व्याप्तमस्ति।

त्रिकसंमुदायरूपेण सर्वेषां पदार्थानां विमर्शनं पृथक् पृथग्भवति। एतेषां सर्वेषां समष्टिः परारूपो गुरुपादुका जपो मनसावृत्तिरूपोऽभ्यासः साधकैः क्रियते।।२।।

भाषार्थ :- अग्नि, चन्द्र, सूर्य, यही त्रिबिन्दु प्रत्येक तत्व एवं पदार्थों में विद्यमान है। इन तीनों का समष्टि रूप ही गुरु पादुका जप है।।२।।

गुरुतत्व शिवतत्व पराशक्ति तत्वात्मत्वेषु अभेदत्वात् अद्वैतमेवास्या श्री विद्यासाधनायाः मन्तव्यम्। अस्य साक्षात्कारेण सर्वक्लेशजातं निवर्तते। क्लेशानां कारणं मायीयं कार्मणमाणवं च त्रिविधं मलमेभ्य एवं पञ्चक्लेशाः समुद्भूताः। ते च संसारावस्थायां जीवात्मानमनवरतं क्लेशयन्ति। जीवात्मा अविद्यावस्थायां शिवतत्वात् पृथगेव स्वसत्तामनुभवति। तन्निवृत्तये अद्वैत भावना कर्त्तव्या। अद्वैत साक्षात्कारे सति सर्वक्लेशनिवृत्तिः' परमानन्दप्राप्तिश्च भवति तदेव तीर्थरूपेणोपदिश्यते तीर्थमितिः—

तीर्थमद्वय सुधारसोदधे-
वारितं निजविमर्श वेलया
आणवादि मलमोचनोचितं
स्नानमत्र विधिना निमज्जनम्।।३।।

टीका :-

सर्वखल्विदं ब्रह्मेति श्रुत्येदं दृश्यमानं नाम रूपात्मकंसर्व ब्रह्मैवाद्वैत—तत्वमेव तदेव सुधारसोदधिरमृतसमुद्रः, तस्य निजविमर्श वेलया वारितं स्वात्म विमर्शशक्तया मर्यादीकृतं तदेव तीर्थपद वाच्यम्। तरन्ति पापेभ्योजनाः येन तत्तीर्थमितिव्युत्पत्या तीर्थशब्द निष्पत्तिः, ब्रह्माद्वैत साक्षात्कारेण सर्वक्लेशानां निवृत्तिः। अत्र तीर्थे विधिना श्रीविद्योपासनोक्त प्रकारेण निमज्जनमेकान्तिक निमग्नता, तेनाणवादि मलत्रयस्य मोचनोचितं दूरीकरणरूपं स्नानं भवति। 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः इति श्रुतेः'।

भाषार्थ :- अपनी विमर्श शक्ति रूपी तट के द्वारा मर्यादित हुआ अद्वैत तत्व ही अमृत का समुद्र है उसे ही तीर्थ कहते है इसी तीर्थ में शास्त्रोक्त विधान से श्री विद्या की उपासना ही निमज्जन अर्थात् स्नान है। इसी स्नान के द्वारा मायीय कार्मण, आणव, इन त्रिविध मलों का विनाश होता है।।३।।

सन्ध्य देवता रूपेण श्री परादेवतां स्तौति सेति :–

सा निशा सकललोकमोहिनी
वासरः सखलु सर्वबोधकः।
सामरस्यमिह सन्धिरेतयोः
श्री परैव ननु सन्ध्यदेवता ।।४।।

टीका :-

वैचित्य संपादन कर्त्री माया मोहिनी पद वाच्या (महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत्) सकल लोकानां सकल संज्ञकानां जीवानां राग–द्वेषमय विषयेषु प्रवर्त्तनकर्त्री सैव निशा रात्रिरज्ञानवस्वरूपा शिव एवं सर्व बोधको वासरः प्रकाशस्वरूपो दिवसरूपः प्रकाशसाम्यात्। एतयोर्द्वयोः सन्धिः, इह शास्त्रे सामरस्यं समरसस्यभावः सामरस्यं ननु निश्चयेन सन्ध्यदेवता अधिष्ठानरूपा श्री परैव श्री रूपा परा शक्तिरेव मन्तव्या।।४।।

भाषार्थ :- समस्त संसार को मोह के वशीभूत करने वाली मायारूपिणी शक्ति ही रात्रि है एवं चराचर विश्व को बोधन कराने वाला अर्थात् ज्ञान दाता भगवान् शिव ही दिवस हैं। जब इन दोनों की संधि होती है तभी सामरस्य प्राप्त श्रीविद्या ही सन्धि है।।४।।

अहन्तया पूजनमाह स्वप्रकाशेतिः–

स्वप्रकाशशिवएवभास्करः
सद्विमर्शविभवा मरीचयः
यैस्तथा स यदि वेदि मण्डलं
तस्य पूजनमहन्तया मतिः।।५।।

टीका :-

स्वप्रकाश स्वरूपः शिव एवं भास्करः सूर्यस्वरूपः सद्विमर्श विभवा विमर्श तत्वादाविर्भूता मरीचयः खेचरी दृक्चरी भूचर्यादिस्वरूपाः यैर्मरीचि मण्डलैस्तथा शास्त्रोक्त प्रकारेण स साधको वेदिमण्डलं कृत्वा निर्माय तस्य शिवस्य पूजनं। अहन्तया अद्वैतरूपेण मतिः नाम मतं करोति। वर्णाग्र्यः अकारः प्रकाशरूपः, हकारः शक्तिरूपः, उभयोरैक्यमद्वैतरूपम् अहम् अहमेवेति चिन्तनं पूजनं सर्वश्रेष्ठम्। अहं पदेन जीवस्यापि ग्रहणं कर्त्तव्यम्। शिवशक्तिसामरस्यात् तस्याप्यणु रूपेण प्रादुर्भावात् अतएव अहं पदेन तस्यापि बोधोजायते अतएव केचित् साधकाः शिवरूपेग केचिच्छक्तिरूपेण च जीवस्वरूप मन्यन्ते।।५।।

भाषार्थ :- स्वप्रकाशरूप भगवान् शिव ही सूर्य रूप है उनकी सत् शक्ति का वैभव ही किरण समूह है उसी किरण मण्डल की वेदी पर अहं (अकार अर्थात् प्रकाशरूप शिव तथा हकार का अर्थ है विमर्शरूपिणी शक्ति इन दोनों की एक रूपता ही सामरस्य रूप है इसी को अहं कहते हैं) रूप से पूजन एवं चिन्तन साधक को अभिमत है।।५।।

त्वक्पलास्थिमयभित्ति भावितं
ज्ञानदीप विगलत्तमोगुणम्।
आत्मतत्वमिह यागमण्डपं
तस्य पूजनविधानमर्चनम्।।६।।

टीका :-

सत्वरजस्तमोगुणानां परिणामतः शरीरमिदं जातं, स्थूलं तमसः, क्रियात्मकं रजसः, ज्ञानात्मकं सत्वगुणतः परिणतम्। त्वक्पलास्थिमयं मांसचर्मास्थिमय तद्भित्त्याभावितमाधाररूपेण ज्ञानदीपेन विगलत्तमोगुणं सत्वगुणात्मक ज्ञानदीपेन अन्धकार स्वरूपं बिगलत्तमोगुणं निवृत्ततमोऽन्ध कारमिह शरीरे आत्मतत्वमेव यागमण्डपं कृत्वा तस्य पूजनविधानं शास्त्रोक्त

रीत्या अर्चनं भवति।।६।।

भाषार्थ :- सत्व, रज, तमोगुण के परिणाम से ही यह शरीर उत्पन्न हुआ है तथा त्वचा, मांस, और अस्थिमय है यही साधना का आधार है इसमें सत्वगुणात्मक ज्ञानरूपी दीपक से तमोगुणात्मक अन्धकार को नष्ट करते हुये अपनी आत्मा को ही यज्ञ मण्डप बनाकर उसके पूजन का विधान ही अर्चन है।।६।।

पाशनिवर्त्तको भगवान्शिवइत्याह वेदिकेति :–

वेदिका ह्रदयपद्मकर्णिका
चिन्मयी वसति तत्र देवता।
यो हि तद्यजनकर्मकर्मठ
स्तस्य पाश भिदुरः सभैरवः।।७।।

टीका :-

ह्रदय पद्म कर्णिका वेदिकारूपेण चिन्तनीया। अनाहतचक्रस्थितं पद्मं सहस्रारस्थितं च ह्रदय पदेन गृह्यते तत्र चिन्मयी शक्तिः देवता रूपेण वसति तस्या एवायं विलासो जगद्रूपः यो हि साधकस्तद्यजन कर्मणि कर्मठः निपुणः तस्य पाशभिदुरः सर्वबन्धनिवर्तकः स भैरवः स भगवान् शिव एव। "ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः" "पाश वद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः, सदाशिवः"। अष्टौ पाशाः तन्त्रेषूपदिष्टाः तद्यथा "घृणा लज्जा भयं शङ्का जुगुप्सा चेति पञ्चमी। कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशा इमे स्मृताः।।७।।

भाषार्थ :- ह्रदयस्थित अनाहत चक्र एवं मस्तक स्थित सहस्रार चक्र इन दोनों पद्मों को ह्रदय कहते हैं। इन्हीं में श्री परा शक्ति का निवास है जिसकी कृपा से ही यह सम्पूर्ण संसार उद्भूत हुआ जो साधक इन चक्रों में उस परा शक्ति के पूजन में रत हैं उनके समस्त बंधनों को भगवान् भैरव काट देते हैं।।७।।

विश्वकारण विकल्प बुद्धि निवर्त्तकमोह विश्वेतिः–

विश्वभेद विभवो विकल्पधी
र्लक्षणो भवति विध्नसन्ततिः।
निर्विकल्पनिजधामविश्रम
स्तन्निराकरणमत्र कीर्तितम्।।८।

टीका :-

विश्वभेदस्यविभवः कारणं विकल्पधीलक्षणः, अहं ममाभिमानरूपो विध्नानां सन्ततिः स एव भवति। क्लेशानां कारणं द्वैतबुद्धिरेव निर्विकल्पधाम्नि शैवे पदे विश्रमस्तन्निराकरणमत्र कीर्तितम्। शिवे पदेऽभेदेन स्थितिरेव क्लेश निवर्तिकेति भावः।।८।।

भाषार्थ :- अहं ममाभिमान रूप विकल्प बुद्धि ही विध्नों का कारण है अतएव निर्विकल्पात्मक शिव पद में विश्राम ही एक मात्र विकल्प बुद्धि रूपी विध्नों का निराकरण है ।।८।।

यत्र निर्विषय बोध लक्षणः
स्वात्म शम्भुरवतिष्ठतेऽनिशम्।
तत्वजालकमिदं शिवावधि
क्ष्मामुखं सकलमासनं मतम्।।६।।

टीका :-

यत्र परस्मिन् पदे निर्विषय बोध लक्षणः निर्गुणो निराकारस्वरूपः स्वात्मरुपः शम्भुः शिवोऽनिशं सर्वदाऽवतिष्ठते विराजते। तस्य क्ष्मामुख पृथ्वी तत्वमारभ्य शिवावधि तत्वजालकं षट्त्रिंशत् तत्व जातं सकलमासनं मतं योगिनाम्। तत्वानामेषः क्रमः पृथ्वी, जलं, तेजः वायुः, आकाश, इति पञ्चभूतानि, शब्द–स्पर्श–रूप रस–गन्धाः इति पञ्चतन्मात्राणि वाक्पाणिपादयापूस्थनामानि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, श्रोत्रत्वक् चक्षू रसनाघ्राणाख्यानि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि, मनोबुद्धिरहङ्कार इति त्रिविधमन्तः करणं, प्रकृतिः पुरुषः कला, विद्या रागः कालः, नियतिः, माया शुद्धविद्या,

ईश्वरः, सदाशिवः, शक्तिः शिवः इत्येतत्सर्व श्लोके तत्वजालकपदेन प्रोक्तम्। पञ्चमश्लोके "अहम्‌रूपेण यत्तत्वमुपदिष्टं तत्प्रत्याहारन्यायेन सर्वेषां षट्त्रिंशत् तत्वानामपि वाचकं स्वीकृतम् तद्यथा पञ्चभूतानां वाचकः कवर्गः पञ्चतन्मात्राणां चवर्गः कर्मेन्द्रियाणां टवर्गः ज्ञानेन्द्रियाणां तवर्गः, मनः समारभ्य पुरुषपर्यन्तस्य पवर्गः, कलामारभ्य मायापर्यन्तस्य य र ल वाः, शकारमारभ्य क्षान्ताः शुद्ध विद्यादि शक्ति पर्यन्ताः तत्वानि, स्वराणां षोडश संख्यकानामकारे समावेशात्। अकारः शिवस्य वाचकः प्रोक्तञ्च अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः हकारोऽन्त्यः कलारूपः विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः सर्वेषां तत्वानां शिवशक्ति पदार्थादावि भूतत्वात् तत्रैव च लयत्वाद् "अहम्" मात्र मेवावशिष्यते।।९।।

भाषार्थ :- जिस स्थान पर निर्गुण निराकार स्वरूप शिव भगवान् सर्वथा निवास करते हैं वही स्थान पृथ्वी तत्व से लेकर शिव पर्यन्त ३६ तत्व उनका सम्पूर्ण आसन है ।।९।।

वेद्य संविद इदं स्फुरन्मनो
वेत्तृसंविदि विलापनामयी
वृत्तिरद्वयविमर्शविग्रहा
प्राण संयति रुदीरितोत्तरा।।१०।।

टीका :-

वेतृ वेद्ययोः स्फुरण कारिणी परा संवित्। यदा वेद्य संविद इदं मनस्तत्वं स्फुरति तदाऽनेकाकारेण जगद्भासते तदैव क्लेशानामुत्पत्तिः। यदा वेतृ संविदि स्फुरति तदा सर्वद्वैतस्य विलापनामयी द्वैतर्निवर्तिका अद्वयविमर्शविग्रहा अद्वैत वृत्तिरुदेति प्राण संयति सति मूलाधारमारभ्य द्वादशान्तपर्यन्तासती उत्तरावृतिरुदीरिता कथिता योगिभिः। यया वृत्या पूर्णाद्वैतानुभवो भवति।।१०।।

भाषार्थ :- यह परा संविद जब विषय में स्फुरित होती हैं तब अनेक

रूप वाला यह संसार प्रतीत होता है। और जब वेत्ता अर्थात् ब्रह्म में स्फुरित होती है तब सम्पूर्ण संसारलय हो जाता है प्राणों के संयम होने पर ही उत्तरावृत्ति का उदय होता है। जिसके द्वारा ही पूर्ण अद्वैत का अनुभव होता है।।१०।।

आसनानि नव चक्र संविदा
मुद्भवस्थिति लयस्त्रयः क्रमात्
अङ्गषट्क रचना षडध्वना
मंशतावगतिरात्मसंविदा।।११।।

टीका :-

जगदुत्पत्ति स्थितिलयश्चैतत् संविद् तत्वतः क्रमेण भवति 'जन्माद्यस्य यतः इति व्यास सूत्रेण संमतञ्च। इदं शरीरमपि जगतः स्वरूपं तदंशमेव पिण्ड ब्रह्माण्डयोरैक्यं कृत्वा कथयति नवचक्र संविदामासनानि 'अर्धचन्द्रः निरोधिका, नादः, नादान्तः, शक्तिः, व्यापिका, समना, उन्मना महाशून्यं, इति नवस्थानान्येवासनानि संवित्तत्वस्य, षड़ध्वनामङ्गषट्करचना "वर्णः कला पदं तत्वं मन्त्रो भुवनमेव च। इत्यध्वषट्कं देवेशि भाति त्वयि चिदात्मनि।। षट् चक्राणां स्थितिरत्राङ्गत्वेन गृह्यते। आत्म संविद् अंशतावगतिरेव ज्ञातव्या। षडध्वाङ्गभूतवर्णैरेव षट्चक्राणां स्थितिरिति। मूलाधार, स्वाधिष्ठान मणिपूरानाहत विशुद्धाज्ञा, ललना सोमचक्र सहस्रारा इति संविदः कार्यकरणेनवासनानि। एषु स्थानेषु संयमात् संवित्तत्तवस्य साक्षात्कारः षट् चक्रेषु भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यमिति समष्टि भूतानीमानि षडङ्गान्याहुः। अङ्गाङ्गिनोरैक्यात् स्थिरसुखमासनमिति योगशास्त्रे आसनात् स्थिर सुखप्राप्तिः प्रतिपादिता। इमानि नवासनान्यन्तरङ्गभूतानि तदर्थान्येव।।११।।

भाषार्थ :- इस संविद् तत्व अर्थात् परा शक्ति से ही संसार की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होता है उस पराशक्ति का आसन ब्रह्माण्ड के

अनुसार इस पिण्ड में भी नव संख्यात्मक हैं तथा छै स्थानों से जाने के मार्ग है वहीं छै स्थान षट् चक्रों के नाम से व्यवहृत हैं।।११।।

काम ऊर्ध्वगतबिन्दुराननं
भानुरेष तदधो गतौ स्तनौ
चित्रभानुशशिनावुभौकला
योनिरत्र सहरार्धकुण्डली।।१२।।

टीका :-

कामकला स्वरूपमाह–कामेति ऊर्ध्वत्रिकोण स्वरूपे ऊर्ध्वबिन्दुराननं मुखरूपं भानुः सूर्यस्वरूपश्चिन्तनीयः तदधोगतौ चित्रभानुःऽग्निः शशीचन्द्रश्च स्तनद्वय रूपेण चिन्तनीयौ। हरार्ध कुण्डल्यत्रयोनिरूपेण चिन्तनीया पूर्वोक्तादहमित्यस्माद् हकारवर्णादाविर्भूता तत्स्वरूपा च हरार्धकुण्डलीति ऊर्ध्वकुण्डलीति वा कथ्यते सा योनि रूपेण चिन्तनीया। इमा एव चतुष्कला रूपेणाग्रिम पद्ये कथयिष्यते।।१२।।

भाषार्थ :- ऊर्ध्व त्रिकोण में ऊपर का बिन्दु सूर्य है जो मुख रूप से चिन्तनीय हैं और नीचे के दोनों बिन्दु अग्नि एवं चन्द्रमा हैं जिनका स्तनद्वय रूप से चिन्तन करना चाहिये। और अहं शब्द में योनि स्वरूपी हकार ही ऊर्ध्व कुण्डली के रूप में ध्यान करने योग्य है यही काम कला का स्वरूप है ।।१२।।

एवमात्मनि चतुष्कलामये
सर्वतत्वसमवायलक्षणे
न्यासमाहुरिह वैखरादि वाग्
वृत्तितः समविशेष भावनाम्।।१३।।

टीका :-

एवं द्वादश श्लोकोक्त प्रकारेण चतुष्कलात्मके सूर्यचन्द्राग्निह

रार्धकला–रूपे आत्मनिसंवित्तत्वे सर्वतत्वानां समवाय लक्षणः षट्त्रिंशत्तत्वानां समुदाय स्तस्मिन्निह वैखरादिवाग्वृत्तितः अकारमारभ्य क्षान्तपर्यन्तं न्यासं तथा समविशेष भावनाञ्च तत्वानामाविर्भावसतिरोभावरूपमाहुः।।१३।।

भाषार्थ :- उपरोक्त प्रकार से सूर्य, चन्द्र, अग्नि, एवं ऊर्ध्व कुण्डलीगत संविद् तत्व ही ३६ तत्वों का आश्रय है इसी स्थान पर अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त मातृका का न्यास करना चाहिए। यहीं से तत्वों का आविर्भाव एवं तिरोभाव होता है।।१३।।

पूरुषत्व समवाप्ति हेतुषु
यष्टिकाख्य निजसूक्ष्मवर्ष्मणः
चित्पदे लयविधानमष्टवा
ग्देवतान्यसनजुष्टमुत्तमम्।।१४।।

टीका :-

पुरुषत्व समवाप्तिः परतत्व प्राप्तिः तस्या हेतुषु साधनेषु यष्टिकाख्यं मेरुदण्डरूपेण प्रसिद्धं तस्य निजसूक्ष्म वर्ष्मणः निजसूक्ष्मशरीरस्य सम्बन्धिन्यः अष्टवाग्देवता वशिन्याद्याः तासां न्यसनं न्यासः जुष्टं युक्तं चित्पदे संवित्तत्त्वे लय विधानमुत्तमं सर्वश्रेष्ठं मन्यन्ते साधकैः।

अष्ट वाग्देवतानां मूलाधारमारभ्य सोमचक्र पर्यन्तं क्रमेण न्यासः वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी सर्वेश्वरी, कौलिनी इत्यष्ट वाग्देवताः क्रमेण लयभावनया सर्वासां लये सति चित्पदस्यानुभूतिर्जायते।।१४।।

भाषार्थ :- परतत्व की प्राप्ति हेतु मेरुदण्ड के सूक्ष्म शरीर में वशिन्यादि आठ वाग्देवताओं का मूलाधार से लेकर सोमचक्र पर्यन्त न्यास करना चाहिए तथा क्रमशः इन देवताओं की लय भावना से साधक को परतत्व का अनुभव होता है ।।१४।।

अन्तरङ्गकरणप्रभावतः
स्वप्रकाश नभसोऽत्र संक्रमात्
पीठभावमुपयान्ति तानि त
न्यास कर्म परधाम्नि हृल्लयः।।१५।।

टीका :-

अन्तरङ्गकरण प्रभावतः अन्तरङ्ग एकादशेन्द्रिय प्रभावेण सत्तया स्वप्रकाश नभसः स्वयं प्रकाश नभसो रूपस्य ब्रह्मणः संक्रमात् सम्बन्धात् तानि पीठभावमुपयान्ति। एकादश पीठ स्थानानि तेषांन्यास कर्म तेन परधाम्नि चित्पदे हृल्लयस्तेन एकाग्र्यं सम्पद्यते। कामरूपं, जालन्धर, पूर्णगिरिः उड्डियानं, वाराणसी अवन्ती, माया, द्वारावती, मधुपुरी, अयोध्या, काञ्ची इत्येकादश पीठ स्थानानि। तान्येवान्तरङ्ग एकादशेन्द्रियाणि पीठभावमुपगतानि दश महाविद्यानामपि करणत्वेन ग्रहणम्। मनसोऽनिन्द्रियत्वेन दशानां पीठानामिन्द्रियाणाञ्चै तत्पक्षे स्वीकारः मायां परित्यक्तवान् क्रमज्ञः। "इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परंमनः" इति प्रमाणात् इन्द्रियेभ्यो मनसः पृथग्ग्रहणात्।।१५।।

भाषार्थ :- दश अथवा एकादश इन्द्रियां जो शर्र र के अन्तर्भाग में स्थित है उनका सम्बंध स्वयं प्रकाशस्वरूप ब्रह्म से है उनमें ही काम रूप आदि पीठों का न्यास करने से परतत्व में एकाग्रता उत्पन्न होती है।।१५।।

तत्वधाम युगमातृकात्मक,
त्रित्रिकेण नियतेषु वस्तुषु।
पादपात्र परमामृतत्रयं,
तुर्य विश्रमणमर्घ्यशोभनम्।।१६।।

टीका :-

तत्वानां धामतः संवित् तत्वतः युगमातृका स्वरव्यञ्जन भेदवती पुनश्च

त्रित्रिकेण यकारमारभ्य क्षान्तेन सहत्रिकेण सर्व वस्तुषु नियतेषु परमामृतत्रयं पादपात्रं पाद्यपात्रं तुर्य पदे विश्रमणं शोभनमर्घ्यं भवति। अकथादि संज्ञया च इदमेव व्यवहृतम्।।१६।।

भाषार्थ :- संविद्तत्व से ही उत्पन्न स्वर व्यञ्जन द्विविधि भेद वाली मातृ–का एवं यकार से लेकर क्षकार पर्यन्त तीनों त्रिकों में विभक्त है। वह सम्पूर्ण वस्तुओं में नियत रूप से निवास करती है उसके तीनों त्रिक ही अमृतमय पाद्य पात्र है और उस मातृका का परतत्व में विश्राम ही अर्घ्य है। अकथादि संज्ञा से भी इसे ही कहा गया है ।।१६।।

मेदिनी प्रमुखमाशिवं मतं
तत्वचक्रमिहचक्रमुत्तमम्।
स्वस्वभाव समवाय भासिनी
देवता भवति सादिनी कला।।१७।।

टीका :-

इह शास्त्रे मेदिनी प्रमुखमारभ्य आशिवं शिव पर्यन्तं तत्वचक्रं षट् त्रिंशत्तत्व चक्रमुत्तमं चक्रं भवति। तत्वानां तत्वस्वभावानाञ्च समवायः समूहस्तस्य भासिनी प्रकाशिका सादिनी कला देवता भवति। सादाख्य तत्वाश्रिता सर्व तत्वचक्रं प्रकाशयतीत्यर्थः।।१७।।।

भाषार्थ :- पृथ्वी से लेकर शिव पर्यन्त ३६ तत्व एवं उनके स्वभाव ही उत्तम चक्र हैं। जिनको प्रकाशित करने वाली सादिनी कला है जो सदाशिव तत्व के आश्रित है वही सम्पूर्ण तत्व चक्रों को प्रकाशित करती है।।१७।।

आन्तरस्य निज संविदात्मनो
मातुरक्ष करणाध्वनो बहिः।
मेय संविदि समर्पणं तदा
वाहनं समरसत्व लक्ष्मणम्।।१८।।

टीका :-

सर्वान्तर्भूतस्य निजसंविदात्मनो मातुः प्रमातृरूपस्य अक्षकरणाध्वना इन्द्रिय द्वारा मेय संविदि प्रमेय तत्वे विषय प्रकाशक संविदि यत्समर्पणं एकीभावमापन्ने संवट्टे समरसत्वलक्षणमद्वैतरूपं तदावाहनं भवति।।१८।।

भाषार्थ :- संविदात्मक प्रमाता अर्थात् साधक अपनी इन्द्रियों के द्वारा उस मेय तत्व अर्थात् संविद् तत्व में एकीभावत्व प्राप्त करता है वही अद्वैत स्थिति है उसी को पराशक्ति के पूजा का प्राथमिक उपचार आवाहन कहते हैं।।१८।।

पञ्चधैव यदिदं प्रपञ्चितं
पञ्चधानुभव शाश्वतोदयम्।
तत्सुसंहरण मौपचारिकं
कर्मनिर्मलनिजात्मसंविदि।।१६।।

टीका :-

इंद दृश्यमानं प्रपञ्चितं जगत् पञ्चधैव पञ्चभूतरूपेण विस्तारमाप्तम्। पञ्चधानुभवेन शब्द स्पर्शरूपरसगन्धरूपेण शाश्वतोदयं नियमपूर्वकमुदयमेतेभ्यस्तत्वेभ्यो जायते। अस्य पञ्चतत्वस्य संहरणमौपचारिकं कर्म निजात्मसंविदि पूजोपचार रूपं संहरणं लयकर्म भवति।।१६।।

भाषार्थ :- यह दृश्यमान सम्पूर्ण संसार पञ्चभूतात्मक है जिसका अनुभव शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध स्वरूप से पांच प्रकार का होता है। शरीर में इन तत्वों का नियमपूर्वक उदय होता है और क्रमानुसार इनका परतत्व में लय ही मानसोपचार पूजन है।।१६।।

यस्तु पञ्चदशधा प्रकल्प्यते
काल एष शशिभानु संक्रमात्।
तस्य शाश्वत्पदे लयक्रिया
नित्यवासर कलार्चनं मतम्।।२०।।

टीका :-

अथाद्यास्तिथयस्सर्वे स्वरा विन्द्वसानगाः तदन्तः काल योगेन सोमसूर्यौ प्रकीर्तितौ। अकारमारम्य (अं) इति पञ्चदशस्वरपर्यन्ताः शशिभानु संक्रमात् सूर्यचन्द्रयोगात् पञ्चदशतिथयः अहोरात्र रूपाः जायन्ते। एतस्य सर्वस्यैषः काल एवं हेतुस्तस्य शाश्वत्पदे लयक्रिया (अः) इति षोडशी कला रूपं शाश्वत पदं तस्मिन् लये सति नित्यवासर कलार्चनं नित्यप्रकाश मय दिवस कलार्चनं मतम्।।२०।।

भाषार्थ - अकार से लेकर (अं) पर्यन्त पन्द्रह स्वर ही दिन और रात रूप में पन्द्रह तिथियां होती है। अस्तु इन पन्द्रह स्वरों का काल से योग है और सोलवाँ स्वर (अः) ही परतत्व है जहां कि सदैव प्रकाश रहता है। उसका अर्चन ही नित्य दिवस कला का अर्चन है।।२०।।

बाह्य चक्रमुपगामरीचय
स्तत्वजाल लसदात्मसंविदः।
तत्समर्चन मतीतचिन्मया
नाख्यधाम्नि विलयक्रमक्रिया।२१।।

टीका :-

बाह्य पूजनचक्रं श्रींचक्रं मूलबिन्दुमारभ्य त्रैलोक्य मोहनचक्रपर्यन्तं तत्स्थाः मरीचयः एकाधिक नवति संख्याका किरणरूपा देवतास्तत्वजालेन लसतोयुक्तस्यात्मसंविद आत्मतत्वस्य वाड्.मनसयोरतीतमतिक्रान्तं चिन्मयमनाख्यं कथयितुमशक्यं धाम तस्मिन् विलयक्रमक्रिया क्रमेणलयचिन्तनं तत्सर्मचनं सम्यक्पूजनंभवति। मूलबिन्दुतत्वात् प्रसृतस्य तत्रैव लयभावनं तत्समर्चन पदेनात्र चिन्तनं सम्मतम्।।२१।।

भाषार्थ :- श्री चक्रमें बिन्दु से लेकर त्रैलोक्य मोहन चक्र पर्यन्त एकानवे (९१) संख्यात्मक किरण देवताओं का षट्त्रिंशत् तत्व युक्त

अनिर्वचनीय पराशक्ति में क्रमशः लय की भावना का चिन्तन ही श्रेष्ठ पूजन है।।२१।।

यच्चतुर्विधमिदं विभासते
तत्वरूपममृतान्तराकृतिः।
तस्य पञ्चमपदे लयक्रिया
सम्मतं बलि चतुष्टयं तथा।।२२।।

टीका :-

यः परमात्मा अमृतान्तराकृतिः अन्तःस्थितामृतकलावानिदं दृश्यमानं चतुर्विधं स्वदेजाण्डजोद्भिज्ज जरायुजरूपं विभासते अथवा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुर्याख्यं विभासते तस्य पञ्चमपदे तुर्यातीते लयक्रिया बलि चतुष्टयं सम्मतं समीचीनं मतम्।।२२।।

भाषार्थ :- जिस परा शक्ति में अमृत कला का निवास है उसी के द्वारा यह दृश्यमान चार प्रकार की सृष्टि (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज जरायुज) एवं चार अवस्थाएँ (जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीय) स्फुरित होती हैं इन चारों का तुर्यातीत पद में लय करना ही चार प्रकार का बलिदान श्रेष्ठ कहा गया है।।२२।।

पञ्चधा प्रसरतश्चिदात्मनो
ह्यान्तरस्य बहिरिन्द्रियात्मना।
सामरस्यमिह संविदात्मना
रार्तिकं परमिदं समीरितम्।।२३।।

टीका :-

पञ्चधा प्राणपान समान व्यानोदानरूपेणान्तरस्य चिदात्मनः हि प्रसरतः विस्तारं प्राप्तस्य बहिः पञ्चेन्द्रियात्मना श्रोत्र–त्वक्, वाक्–चक्षू–रसना–घ्राणरूपेण इह चिदात्मनि संवित्स्वरूपे सर्वेषां लयेनेदं परं श्रेष्ठमारार्तिकं

समीहितं प्रोक्तं महात्मभिः।।२३।।

भाषार्थ :- पांच प्रकार (प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान) से विस्तार प्राप्त अन्तरात्मा का पञ्चेन्द्रिय रूप से पराशक्ति में लय ही महात्माओं ने सर्वश्रेष्ठ आरती उपचार बताया हैं।।२३।।

वाक्सहैव मनसा निवर्तते
ऽप्राप्य निष्कलनिरञ्जनाद्यतः।
तत्र निर्मनसि शब्द वर्जिते
धाम्नि विश्रमणमुत्तमोजपः।।२४।।

टीका :-

यतो यस्मान् निष्कलनिरञ्जनात् संवित् तत्वात् मनसा सहवाक् शब्द शक्तिः तत्स्वरूपमप्राप्य स्वसामर्थ्याद्वहिर्ज्ञात्वा निवर्तते प्रकाशयितुमशक्यमिति मन्यते। तत्र निर्मनसि मनसाऽगम्ये शब्दवर्जिते शब्देन प्रकाशयितुमशक्ये धाम्नि प्रकाशस्वरूपे विश्रमणमुत्तमोजपो मनसा भाव श्रेष्ठो जपः इति भावः।।२४।।

भाषार्थ :- वह परतत्व निष्कल और निरञ्जन है अतएव मन और वाणी की पहुंच वहां नहीं है इसलिए उस शब्द शक्ति वर्जित एवं मन से अगम्य उस प्रकाश स्वरूप परतत्व में विश्राम ही श्रेष्ठ जप है।।२४।।

बिम्बितं स्फुरति यत्र संविदा
रूपमान्तर मिदन्तया बहिः
विश्वमेतदखिलं चराचरं
दर्पणं हृदय दर्पणं परम्।।२५।।

टीका :-

यत्र बिम्बितं बिम्बस्वरूपमिदन्तयां विषय रूपेणान्तरमिदं रूप संवित्तत्वेन

बहिः नामरूपात्मकरूपेण स्फुरति व्यनक्ति तदखिलं चराचरं ह्रदय दर्पणं विश्वमेतत् परं श्रेष्ठं दर्पणं सम्मतम्।।२५।।

भाषार्थ :- जिसमें बिम्ब रूप से प्रतिबिम्बित होकर वह परतत्व नाम रूपात्मक रूप से व्यक्त होता है। यह चराचर सम्पूर्ण विश्व ही ह्रदय दर्पण है यही श्रेष्ठ दर्पणोपचार है।।२५।।

छादयन्निखिलमात्म संविदा
त्रायते निखिलताप संकटात्।
यच्चिदम्बरगतं शिवात्मकं
छत्रमत्र कमलं सुधामलम्।।२६।।

टीका :-

निखिलं जगदात्मसंविदा पराशक्तया निखिलतापसंकटात् आध्यात्मिकाधि दैवताधि भौतिकताप संकटात् या त्रिविध दुःखात् त्रायते। यच्चिदम्बरगतं परव्योमस्थितं सुधावदमलं निर्मलं कमलं सहस्रारेस्थितं सर्व छादयन् अत्र संविद् विषये छत्रं सम्मतम्।।२६।।

भाषार्थ :- पराशक्ति के द्वारा आध्यात्मिक, आधिभौतिक आधिदैविक इन त्रिविध दुःखों से रक्षा होती है। परव्योम अर्थात् सहस्रार स्थित कमल अमृत के समान निर्मल है और सबको आच्छादित किये हुये है वही पराशक्ति का छत्र है।।२६।।

पञ्चधा स्फुरणमेव संविद
श्चामरं विविध चातुरक्रमम्
विश्वदृग्लय विचित्रनिर्मितं
स्वेक्षणं परमकम्पदं तपः।।२७।।

टीका :-

संविदः=चिदात्मनः पञ्चधा चिद् आनन्दः इच्छा ज्ञानं क्रिया

चैतदभिमानि देवताः सदाशिवः, ईश्वरः, रूद्रः, विष्णुः, ब्रह्मा च विविध चातुरक्रमं स्थूलं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं सूक्ष्मतमञ्च विश्वदृशोऽनेक प्रकारिकादृष्टयस्तासां लय विचित्रेण निर्मितं स्वेक्षणं संवित्तत्त्वस्य चलनक्रियया पुनः पुनर्दर्शनं परकम्पदं स्फुरणमाविर्भवनं तप एव चामरं पूजाङ्गं भवति।।२७।।

भाषार्थ :- संवित् तत्व का चार क्रम से (स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम) से एवं पांच प्रकार (चिद्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान, क्रिया) के चिन्तन द्वारा सम्पूर्ण प्रकार की दृष्टियों का लय करते हुये चलन क्रिया द्वारा स्फुरित होते हुए उस आत्म तत्व का साक्षात्कार ही चामरोपचार है।।२७।।

एषणात्रयमयस्य वर्ष्मण
स्तत्व संचयमयस्य संविदि।
धाम्नि तत्व समतीत सत्वके
स्वात्मनः खलुनिवेदनंमतम्।।२८।।

टीका :-

एषणात्रयमयस्य लोकैषणा, पुत्रैषणा, वित्तैषणेति एषणात्रयं तन्मयस्य वर्ष्मणोः जीवात्मतत्वस्य तत्वसंचयमयस्य पञ्चतत्ववैकत्रीभूतस्य षट्त्रिंशत् तत्वातिक्रान्तसत्वके स्वरूपे परत्तवे धाम्नि प्रकाशमये संविदि खलु निश्चयेन सर्वभावेन स्वात्मनः समर्पणं निवेदनंमतम्। 'यत्करोषियदश्नासि यज्जुहोषिददासियत्' इत्यादिना गीतायांयदुक्तम् तदेवात्रसुसङ्गतम्भवति।।२८।।

भाषार्थ :- तीन एषणाओं वाले पञ्चभौतिक शरीराभिमानी जीवात्मा को षट्त्रिंशत् तत्व से परे प्रकाशमय सात्विक परतत्व में सर्वभावेन जो समर्पण है वही पूजा का निवेदन है।।२८।।

स्वप्रकाशवपुषा गुरुः शिवो
यः प्रसीदति पदार्थ मस्तके
तत्प्रसादमिह तत्त्वशोधनं
प्राप्यमोदमुपयाति भावुकः।।२६।।

टीका :-

पदार्थ मस्तके सर्वतत्वमूर्धन्यभूते स्वप्रकाशवपुषा प्रकाशमय विग्रहेण यः स्थितः शिवः स एवं गुरुर्यदा प्रसीदति प्रसन्नोभवति। तत्प्रसादमिह शिष्ये तत्व शोधनं तत्त्वानां निर्मलीभावं प्राप्य भावुको गुरुभावनायुक्तः शिष्यो मोदं हर्षं परमानन्दरूपमुपयाति प्राप्नोति। भूतशुद्धयादिकन्तुतदन्तर्गतमेव।।२६।।

भाषार्थ :- सहस्रार में सम्पूर्ण तत्वों के ऊपर प्रकाशमय शरीर वाले भगवान् शिव ही गुरु हैं। वह जब प्रसन्न होते हैं तब शिष्य को तत्व शुद्धि प्राप्त होती है एवं गुरु भावना से युक्त शिष्य प्रसन्न होकर परमानन्द प्राप्त करता है।।।२६।।

पाशजालकमिदं परं पशो
र्नाशकारण मतो मतं हविः।
तत्त्वतो निजगुरोर्निरीक्षणा
त्प्राप्यते तदमलं पवित्रितम्।।३०।।

टीका :-

पशोर्जीवात्मनः इदं दृश्यमानं सर्व परमतीव क्लेशकारकं पाशजालकं बन्धजनकमध्यात्मशास्त्रे निर्णीतम्। अतस्तस्य नाशकारणं हविर्मतम्। होमकार्यस्य प्रकाशात्मकत्वात् तद्द्रव्यस्य च दाह्यत्वाच्च पाशजालोऽपितत्समः। तत्त्वतो निजगुरोर्निरीक्षणात् कारुणिक गुरुदृष्टया निरीक्षणादवलोकनादमलं निर्मलं पवित्रितं शुद्धं ज्ञानं प्राप्यते। "ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मी करोतीदमेवात्र हविर्मतम्। अपाने जुह्वति प्राणमित्यादि स्मरणात्।।३०।।

भाषार्थ :- पाशबद्ध जीव का दृश्यमान सम्पूर्ण संसार पाशजाल अर्थात् बन्धन है उसके विनाश हेतु इस प्रकार का होम आवश्यक है कि गुरुदेव की दया दृष्टि से शिष्य को निर्मल और पवित्र ज्ञान प्राप्त हो जिसकी अग्नि से वह पाशजाल भस्म हो जाय।।३०।।

वेद्यराशिधमनेन विश्वतो
निर्विकल्पमय वासनोल्बणम्।
चित्तमेव धमनं शिवे मुख
स्यार्पणं धमनिकार्पणं परम्।।३१।।

टीका :-

विश्वतः, सर्वतो वेद्यराशिधमनेन प्रमेयराशि निवर्तनेन तस्य सविकल्प–कत्तवान्निवर्तनमेव श्रेयः। निर्विकल्पमयवासनोल्बणं सामरस्यमयभावनया प्रवरतमं चित्तमेव शिवे परमतत्वे मुखस्यार्पणं परमश्रेष्ठं धमनं धमनिकार्पणं भवति मुखेनेयं धमनक्रिया होमकर्तृभिः क्रियते चित्तधमनं भस्त्राप्राणायामेन भवति।।३१।।

भाषार्थ :- निर्विकल्प समाधि की तीव्र भावना द्वारा सम्पूर्ण विषय राशि भस्म हो जाती है मन निर्मल हो जाता है और उसका शिव तत्व में समर्पण ही होम के लिए उक्त तीव्र भावना रूपी धौंकनी है यह भस्त्रा प्राणायाम का स्वरूप है।।३१।।

दीयते परशिवैक्य भावना
क्षीयते सकल पाप संचयः।
येन चिज्जलधि पारसेतुना
दीक्षणं गुरु कटाक्ष वीक्षणम्।।३२।।

टीका :-

साधक साफल्यस्य गुरुमूलकत्वाद् गुरुकटाक्षमुपदिशन्नाह :— दीयत

इति। यदा श्री गुरुणा परशिवैक्यभावना अद्वैताख्या शिष्यकल्याणायदीयते उपदिश्यते तदा तथा दृष्टि शक्तिपातदीक्षया सकलपापसंचयः समस्त पापराशिः नश्यति चिज्जलधि सेतुना चिदात्मसिन्धोःसेतुवत् तरणोपायभूतया गुरुकटाक्ष–वीक्षणमेव दीक्षणं भवति एतदनुभवात्मकेन रूपेणैव ज्ञातुं शक्यम्।।३२।।

भाषार्थ :- जब श्री गुरुदेव शिष्य कल्याण के लिये अद्वैत तत्त्व का उपदेश करते हैं तब उनके कृपा दृष्टि पूर्वक देखने से दीक्षा प्राप्त होती है यही शक्ति पात है इसके द्वारा समस्त पाप राशि नष्ट हो जाती है यहीं पर तत्व रूपी समुद्र के पार करने के लिए सेतु है इस प्रकार श्री गुरुदेव की कृपा पूर्वक निरीक्षण ही श्रेष्ठ दीक्षा है।।३२।।

अन्तरङ्ग करणात्मनाञ्चतुः
स्रोतसां विविध देवताजुषाम्
पूजनं परमिहोन्मनी शिखा
मध्यवर्ति हि शिवात्मयोजनम्।।३३।।

टीका :-

अन्तरङ्ग करणात्मनाञ्चतुः स्रोतसां चतुरन्तरङ्ग प्रवाहितानां मनोबुद्धि चित्ताहङ्कार रूपाणां विविध देवताजुषां ब्रह्मविष्णुरुद्रचन्द्रदेवैः सेवितानां करणरूपेण पञ्चज्ञानेन्द्रियाणाञ्चोन्मनीशिखामध्यवर्ति मध्येशिवात्मनो जीवात्म परमात्मनोर्योजनमिह परं प्रकृष्टं पूजनं भवति।।३३।।

भार्षार्थ :-

अन्तरङ्ग से प्रवाहित चार स्तोत मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार एवं उनके अधिष्ठाता देवताओं के द्वारा उन्मनी अवस्था में जीव और परमात्मा का भोजन ही सर्वश्रेष्ठ पूजन है।।३३।।

पञ्चबोधकरणानि मानसं
दर्शनानि विषयप्रदर्शनात्
दर्शनानि षडमूनि तानि त्
त्पूजनं भवति तल्लयाच्चिदि।।३४।।

टीका :-

पञ्चबोधकरणानि पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि मानसं च पञ्चविषयाणां प्रदर्शनाद्दर्शनानि ज्ञानानि भवन्ति षडमूनितानि दर्शनानि तेषां सर्वेषां चिदि संवित्तत्त्वे क्रमेण लयात् तत्पूजनं भवति।।३४।।

भाषार्थ :- पांच ज्ञानेन्द्रियों (श्रोत्र, त्वक् चक्षु, रसना, घ्राण) तथा मन पांचों ज्ञानों का प्रदर्शक होने से इस प्रकार ज्ञान के छः प्रकार हैं इन सबका क्रमशः परतत्त्व में लय ही पराशक्ति का पूजन है।।३४।।

जाग्रदादि समयाश्चतुर्विधा
ह्यन्तरात्म परमात्मविग्रहाः।
पञ्चमेऽत्र तदतीत चिद्घने
धाम्नि तल्लय मतिस्तदर्चनम्।।३५।।

टीका :-

जाग्रदादि समयाः जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्यादि चतुर्विधा संकेता अन्तरात्म परमात्मनो जीवात्म परमात्मनो विग्रहाः शरीराणि समष्टिव्यष्टि रूपाणि स्थूलसूक्ष्म भेदवन्ति तदतीत चिद्घने पञ्चमे तुर्यातीते धाम्नि परब्रह्मणि तल्लयमतिरूभयोरेकत्वमतिस्तदर्चनं पूजनं भ्वति।।३५।।

भाषार्थ :- जीवात्मा और परमात्मा की चार अवस्थायें (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्य) ही व्यष्टि और समष्टि रूप से उनके शरीर है। इन सबसे परे तुर्यातीत अवस्था में जीवात्मा और परमात्मा की एकत्व भावना बुद्धि ही उसका अर्चन है।।३५।।

खे निरस्त निखिलागमक्रियै

र्या च निश्चरति शाश्वतोदया।

सा शिवत्व समवाप्ति कारिणी

खेचरी भवति खेदहारिणी।।३६।।

टीका :-

उक्त दीक्षणे लब्धेसति खे व्योम्नि निरस्तनिखिलागमक्रियैः कर्मप्रतिपादकशास्त्र जालरहितैः पूर्णवैराग्यशीलैः सेविता शाश्वतोदया– विविध प्रत्यवायरहिता या अवस्था निश्चरति वर्तते सा शिवत्वसमवाप्तिकारिणी सर्वक्लेशनिवृत्तिपूर्वकं पूर्णानन्ददायिनी अतएव खेदहारिणी खेचरी मुद्रा भवति।

उक्तञ्च :- "मनः स्थिरं यस्य विनावलम्बनं वायुस्थिरो यस्य विनावरोधनम्। दृष्टिः स्थिरा यस्य विनावलोकनं स्यात् सैव मुद्रा विमला चखेचरी।। इयमेव भैरवी मुद्रा शाम्भवी नाम्ना च साधकैर्व्यवह्रियते।।३६।।

भाषार्थ :- उक्त दीक्षा प्राप्त कर साधक सम्पूर्ण कर्म जाल से मुक्त होकर परव्योम में जिसका सेवन करता है वह अवस्था सब प्रकार के विघ्नों से रहित है तथा सम्पूर्ण क्लेशों को निवृत कर पूर्णानन्द देती है। अतः समस्त दुखों को हरण करने वाली यही खेचरी मुद्रा है।।३६।।

यत्स्वरूप महिमा विकल्पतः

शक्ति चक्रमिह रज्जुसर्पवत्।

तत्स्वरूप परमार्थ बोधत

स्तत्र तस्य विलयो विसर्जनम्।।३७।।

टीका :- यत्स्वरूपस्य परमार्थरूप संवित्तत्त्वस्य महिम्ना आसमन्ताद्विकल्पतः =विकल्प विषयक समस्तकार्यतस्तत्स्वरूपस्य परमार्थबोधतः=अनिवर्त्य बोधादिह बोधे सति रज्जुसर्पवत् यथान्धकारे भ्रान्त्या रज्जौ सर्पबुद्धिर्जायते। अधिष्ठानभूतरज्जुज्ञाने जाते

सर्पबुद्धेर्लयः=निवृत्ति स्तद्वत्तत्राधिष्ठानभूते संवित् तत्वे साक्षात्कारे सति इदं दृश्यमानं शक्ति चक्रं मायामयं विलीयते एतादृशो विलयः पूजा विसर्जनं भवति।।३७।।

भाषार्थः- परमार्थस्वरूप संवित् तत्व की महिमा से ही सांसारिक समस्त मायिक कार्यों से मुक्ति मिल जाती है और उसके रूप का वास्तविक बोध हो जाता है जिससे यह दृश्यमान मायामय शक्ति चक्र विलुप्त हो जाता है। जैसे कि अन्धकार में पड़ी हुई रस्सी में सर्प का भ्रम, वह भी रस्सी के वास्तविक ज्ञान होने पर नष्ट हो जाता है इस भ्रम का विलय ही पूजा का विसर्जन है।।३७।।

या क्रिया समभिहार तस्त्रिधा
दीक्षितस्य गुरुभावनाधिका।
सा विभेद लय भावनादिका
लभ्यतां परशिवैक्य सिद्धये।।३८।।

टीका :- श्री गुरुभावनया अधिका श्रेष्ठत्वमाप्ता दीक्षितस्यदीक्षां प्राप्तस्य विभेदलय भाव नादिका भेद निवृत्तिपूर्विका अद्वैत ज्ञान समर्पिका सा क्रिया समभिहारतः त्रिधा परा, अपरा, परापरा इति त्रिधा कथनतो वास्तविक रूपेण तु एकैव सा पर शिवैक्य सिद्धये परशिवो निर्गुणः परमशिवः सगुणस्तदैक्यसिद्धये अद्वैत लब्धये हे शिष्य गण? लभ्यतां प्राप्यतामित्याशंसनं शिष्याणां कल्याणायेति।।३८।।

भाषार्थ :- श्री गुरु की भावना से जो अधिक श्रेष्ठ हो गयी है एवं दीक्षित साधक की भेदबुद्धि को नष्ट कर जो अद्वैत ज्ञान देती है तथा जो तीन प्रकार की होने पर भी वास्तव में एक वही अद्वैत ज्ञान है प्रदायिनी क्रिया शिष्यगण को सगुण निर्गुण दोनों में अद्वैतावस्था प्रदान करें।।३८।।

इति चिद्विलासस्य प्रबोधिनी वृत्तिः समाप्ता।।

इति चिद्विलास भाषार्थ सम्पूर्ण